सूक्ति-सुधा

कबीर, तुलसी, रहीम, विहारी
इत्यादि महाकवियों की
चुनी हुई चोज भरी
अनूठी सूक्तियां

प्रकाशक—

हिन्दी भवन,
हास्पिटलरोड, लाहौर.

बढ़िया जिल्द १।) सादी जिल्द १)

प्रकाशक—

हिन्दी भवन,

हास्पिटल रोड, लाहौर.

मुद्रक—

विद्याप्रकाश प्रेस,

चङ्गड़ मुहल्ला, लाहौर.

सूची

भूमिका	क
महात्मा कबीरदास	१
गोस्वामी तुलसीदास	२१
कविवर रहीम	३१
महाकवि बिहारीलाल	४६
कविवर वृन्द	५८
गिरधर कविराय	७०
बाबा दीनदयाल गिरि	८०
श्री वियोगी हरि	८८
फुटकर	९६
शब्द-कोष	१०५

भूमिका

भावों की दृष्टि से प्राचीन हिन्दी कवियों को मुख्यतया चार श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है। एक भक्त और प्रेमी कवि, दूसरे शृङ्गारी, तीसरे वीररस के तथा चौथे नीति विषयक एवं नित्य के काम काज या लोक-व्यवहार की कविता करने वाले। हिन्दी में प्रथम और द्वितीय श्रेणी के कवियों की ही अधिकता रही है। कबीर, सूर, तुलसी, मीरा, रसखान आदि प्रथम श्रेणी के तथा बिहारी देव, मतिराम, पद्माकर आदि दूसरी श्रेणी के कवि कहे जा सकते हैं। वीररस के कवियों में से भूषण, लाल और सूदन का नाम ही उल्लेखनीय है। अन्तिम तथा चौथी श्रेणी–नीति कवियों–में रहीम, वृन्द तथा गिरिधर मुख्य हैं।

इस अन्तिम श्रेणी के कवियों ने जो कुछ लिखा है, वह अपने अनुभव से लिखा है। उनके कथन में कूट कूट कर सत्यता भरी है। उनके पद्य इतने हृदय-ग्राही हैं, इतने लोकप्रिय हैं कि आज वे हिन्दी बोलने वालों की भाषा के भाग होकर कहावत के रूप में हर एक छोटे बड़े की ज़बान पर वर्त्तमान हैं।

प्रस्तुत पुस्तक इन्हीं कवियों के कुछ चुने हुए पद्यों का संग्रह है। इनके अतिरिक्त महात्मा कबीरदास, गोस्वामी तुलसीदास, महाकवि बिहारीलाल, बाबा दीन दयालगिरि और श्री वियोगीहरि की कुछ चुनी हुई, चोज भरी सूक्तियों का भी इसमें समावेश किया गया है।

महात्मा कबीरदास संत कवि हैं। इनकी कविता नीति तथा ज्ञानोपदेश की है। सीधी सरल भाषा में अनूठे भावों का भरना आप का ही काम है। भावों की उच्चता की दृष्टि से हिन्दी में आप अद्वितीय हैं। दुविधा पर आप ने कैसा अनुपम कटाक्ष किया है—

"चींटी चावल ले चली, बिच में मिल गई दार।
कह 'कबीर' दोउ न मिले, इक ले दूजी डार॥" ??

कितनी सीधी भाषा में मनुष्य को उपदेश दिया गया है कि भक्ति तथा लोक-सुख दो एक संग नहीं मिल सकते। आप का एक एक अक्षर हिन्दी की अतुल सम्पत्ति है।

महाकवि तुलसीदास भक्त कवि हैं। 'रामचरित-मानस' ने इन्हें अमर कर दिया है। भक्तों की तरह इनके सब ग्रन्थों में प्रायः एक ही भाव बार बार दोहराये गये हैं पर इस संग्रह में इनके केवल नीति और ज्ञानोपदेश के ही कुछ पद्य लिये गये हैं।

रहीम नीति-कवियों में सर्वश्रेष्ठ हैं। यद्यपि आपने शृङ्गार रस को भी अछूता नहीं छोड़ा वरन् उस में भी कमाल हासिल किया है पर आप के नीति विषयक दोहे अमूल्य हैं।

बिहारी की कविता मुख्यतया शृङ्गार रस की है। पर शृङ्गार रस के अतिरिक्त इनके नीति के दोहे भी अनूठे हैं। इनकी कविता में भावों की उड़ान के साथ साथ भाषा का भी अपूर्व चमत्कार है।

"कनक कनक ते सौगुनी, मादकता अधिकाय।
वा खाये बौरात है, या पाये बौराय॥"

इस छोटे से दोहे में धन-मद का क्या ही बढ़िया खाका खींचा गया है।

वृन्द और गिरिधर की कविता प्रायः नीति-विषयक ही है। भाषा की सरलता के कारण इनके पद्य क्या शहर और क्या गांव सभी जगह दृष्टान्त के रूप में बोले जाते हैं। नीति की गूढ़ बातों की अपेक्षा इन्हों ने रोज की काम-काज सम्बन्धी बातों को लेकर ही अधिक रचना की है।

बाबा दीनदयाल गिरि की रचना शैली मनोहर और कविता सरस है। भाषा में व्यर्थ शब्दों की भरमार नहीं है। इनकी अन्योक्तियां अद्वितीय हैं।

श्री वियोगीहरि जीवित सत्कवि हैं। आपकी कविता ओजपूर्ण तथा सरस है और भाषा बड़ी परिष्कृत है।

इन के सिवाय अन्य कवियों की कुछ फुटकर सूक्तियां भी अन्त में दी गई हैं। इस संग्रह के तैयार करने में हमें मिश्रबन्धु विनोद, रहीम रत्नावली, कबीर वचनावली, कविता कौमुदी आदि कई ग्रन्थों से सहायता लेनी पड़ी है अतः इन पुस्तकों के लेखकों और सम्पादकों के हम हृदय से कृतज्ञ हैं।

प्रयाग
२०–११–२८

संग्रहकर्त्ता

सूक्ति-सुधा

महात्मा कबीरदास

महात्मा कबीरदास का जन्म संवत् १४५५ में तथा मृत्यु १५५२ में हुई। इनके माता पिता कौन थे, यह प्रश्न बड़ा विवादास्पद है। कहा जाता है कि इन का जन्म एक विधवा ब्राह्मणी के उदर से हुआ था जो लोकलाज-वश इन को काशी के लहरतारा तालाब के किनारे डाल गई। संयोगवश एक मुसलमान दम्पति—नीमा और नीरू—वहां से गुजर रहे थे, उन्हों ने इन को उठा लिया और इन का पालन पोषण किया।

कबीर साहब बाल्यकाल से बड़े धर्मपरायण थे। तिलक इत्यादि लगा कर राम नाम जपा करते थे। कहते हैं कि लोगों ने इन से कहा कि जब तक तुम निगुरे रहोगे तब तक तिलक जाप से कुछ लाभ न होगा। इस से उन्होंने स्वामी रामानन्द को अपना गुरु बनाया।

कबीर साहब एक ही ईश्वर को मानते थे। कर्म-काण्ड के घोर विरोधी थे। अवतार, मूर्ति, रोज़ा, ईद, मस्जिद, मन्दिर आदि को नहीं मानते थे। अहिंसा, मनुष्य मात्र की समता तथा संसार की असारता को

उन्हों ने बार बार गाया है। ये उपनिषदों के विचार वाले ईश्वर को मानते थे और साफ कहते थे कि वही शुद्ध ईश्वर है, चाहे उसे राम कहो चाहे अल्ला।

हिन्दु और मुसलमान दोनों पर ही इन का प्रभाव था। इन के जीवन काल में ही इन के बहुत से शिष्य हो गये थे। अब भी भारत में ८—९ लाख कबीरपंथी हैं जिन में हिन्दू मुसलमान दोनों हैं। इन की मृत्यु पर इन के हिन्दू और मुसलमान शिष्यों में इनके अन्तिम संस्कार के बारे में झगड़ा होने लगा, किन्तु जब शव पर से चादर उठाई गई तो शव के स्थान पर फूलों का ढेर मिला। उस में से आधे फूल हिन्दुओं ने ले कर काशी में कबीर-चौरा बनाया और आधे फूल मुसलमानों ने ले कर मगहर में कब्र बनाई। ये दोनों स्थान कबीर पन्थियों द्वारा अब तक पूजे जाते हैं।

कबीर निरक्षर थे पर थे स्वाभाविक कवि। सीधी साधी भाषा में आप ने अनूठे हृदयग्राही भाव भर दिये हैं। साधारण जनता को इन की कविता जैसी प्रिय है, विद्वज्जन भी उस में वैसा ही रस लेते हैं, यहां तक कि कवि सम्राट्-रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने इन के पद्यों का अंग्रेजी में अनुवाद किया है।

गुरु गोविंद दोऊ खड़े, काके लागौं पाँय ।
बलिहारी गुरु आपने, गोविंद दियो बताय ॥१॥

सिंहन के लँहड़े नहीं, हंसन की नहिं पांत ।
लालन की नहिं बोरियाँ, साधु न चलें जमात ॥२॥

सब बन तौ चंदन नहीं, सूरा का दल नाहिं ।
सब समुद्र मोती नहीं, यों साधू जग माहिं ॥३॥

गाँठी दाम न बाँधई, नहिं नारी सो नेह ।
कह कबीर ता साध की, हम चरणन की खेह ॥४॥

वृच्छ कबहुँ नहिं फल भखैं, नदी न संचै नीर ।
परमारथ के कारने, साधुन धरा सरीर ॥ ५ ॥

निराकार की आरसी, साधौ ही की देह ।
लखा जो चाहै अलख को, इन ही में लखि लेह ॥ ६ ॥

नहिं शीतल है चन्द्रमा, हिम नहिं शीतल होय ।
कबिरा शीतल संतजन, नाम सनेही सोय ॥ ७ ॥

जाति न पूछो साधु की, पूछि लीजिए ज्ञान ।
मोल करो तलवार का, पड़ा रहन दो म्यान ॥ ८ ॥

संगति भई तो क्या भया, हिरदा भया कठोर ।
नौ नेजा पानी चढ़े, तऊ न भीजे कोर ॥ ९ ॥

हरिया जाने रूखड़ा, जो पानी का नेह ।
सूखा काठ न जानही, केतहु बूड़ा मेह ॥ १० ॥

केसन कहा बिगारिया, जो मूंडौ सौ बार ।
मन को क्यों नहिं मूंडिए, जा में विषय विकार ॥ ११ ॥

कविरा संगत साध की, ज्यों गंधी की बास ।
जो कछु गंधी दे नहीं, तौ भी बास सुबास ॥ १२ ॥

मारी मरे कुसंग की, केरा के ढिग बेर ।
वह हालै वह अँग चिरै, विधि ने संग निबेर ॥ १३ ॥

कविरा गर्व न कीजिए, काल गहे कर केस ।
ना जाने कित मारिहै, क्या घर क्या परदेस ॥१४॥

पानी केरा बुद्‌बुदा, अस मानुष की जात ।
देखत ही छिप जायगा, ज्यों तारा परभात ॥१५॥

ऐसा यह संसार है, जैसा सेमर फूल ।
दिन दस के व्योहार में, झूठे रंग न भूल ॥१६॥

माटी कहे कुम्हार को, तू क्या रूंदै मोहिं।
इक दिन ऐसा होयगा, मैं रूंदूंगी तोहिं ॥१७॥

आये हैं सो जाँयगे, राजा रंक फकीर।
एक सिंहासन चढ़ि चले, इक बँधि जात जँजीर ॥१८॥

मैं भँवरा तोहि वरजिया, बन बन बास न लेय।
अटकैगा कहुं बेल से, तड़पि तड़पि जिय देय ॥१९॥

इक दिन ऐसा होयगा, कोउ काहू का नाहिं।
घर की नारी को कहे, तन की नारी जाहिं ॥२०॥

सेमर सुवना सेइया, दुई ढेंढी की आस।
ढेंढी फूटि चटाक दे, सुवना चला निरास ॥२१॥

माली आवत देखि के, कलियाँ करैं पुकार।
फूली फूली चुन लिए, काल्हि हमारी वार ॥२२॥

हम जाने थे खायँगे, बहुत जमीं बहु माल।
ज्यों का त्यों ही रह गया, पकरि लै गया काल ॥२३॥

पात झरंता यों कहै, सुनु तरवर बनराय।
अब के बिछुरे ना मिलैं, दूर परैंगे जाय ॥२४॥

कबिरा जन्त्र न वाजई, टूटि गए सब तार।
जन्त्र बिचारा क्या करे, चला बजावन हार ॥२५॥

दस द्वारे का पींजरा, तामें पंछी पौन
रहिबे को है आचरज, जाय तौ अचरज कौन ॥२६॥

जो तोको काँटा बुवै, ताहि बोव तू फूल।
तोहिं फूल को फूल है, वाको है तिरसूल ॥२७॥

दुर्बल को न सताइए, जाकी मोटी आह।
बिना जीव की स्वाँस ते, लोह भस्म ह्वै जाय ॥२८॥

आवत गारी एक है, उलटत होय अनेक
कह कबीर नहि उलटिए; वही एक को एक ॥२९॥

मधुर वचन है ओषधी, कटुक वचन है तीर।
स्रवन द्वार है संचरे, साले सकल सरीर ॥३०॥

बोलत ही पहचानिये, साहु चोर को घाट।
अंतर की करनी सबै, निकसै मुख की बाट ॥३१॥

कामी क्रोधी लालची, इन से भक्ति न होय।
भक्ति करै कोइ सूरमा, जाति बरन कुल खोय ॥३२॥

करक करेजे गड़ रही, बचन वृक्ष की फाँस।
निकसाये निकसे नहीं, रही सो काहू गाँस ॥३३॥

आब गई आदर गया, नैनन गया सनेह।
ये तीनों तबही गये, जबहिं कहा कछु देह ॥३४॥

एक शब्द सुख रास है, एक शब्द दुख रास ।
एक शब्द बन्धन करै, एक शब्द गल फाँस ॥३५॥

शब्द बराबर धन नहीं, जो कोई जानै मोल ।
हीरा तो दामों मिलै, शब्दहिं मोल न तोल ॥३६॥

लाली मेरे लाल की, जित देखौं तित लाल ।
लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गइ लाल ॥३ ॥

जिन पावन भुइँ बहु फिरै, घूमे देश विदेस ।
पिया मिलन जब होइया, आँगन भया विदेस ॥३८॥

साधू ऐसा चाहिए, जैसा सूप सुभाय ।
सार सार को गहि रहे, थोथा देइ उड़ाय ॥३९॥

हंसा पय को काढ़ि लै, छीर नीर निरवार ।
ऐसे गहै जो सार को, सो जन उतरै पार ॥४०॥

जब लग नाता जगत का, तब लग भक्ति न होय ।
नाता तोड़ै हरि भजै, भक्त कहावै सोय ॥४१॥

भक्ति गेंद चौगान की, भावे कोइ लै जाय ।
कह कबीर कछु भेद नहिं, कहा रंक कह राय ॥४२॥

लगी लगन छूटै नहीं, जीभ चोंच जरि जाय ।
मीठा कहा अँगार में, जाहि चकोर चबाय ॥४३॥

सोओं तो सपने मिलै, जागो तो मन माहिं।
लोचन राता सुधि हरी, बिछुरत कबहूँ नाहिं ॥४४॥

यह तो घर है प्रेम का, खाला का घर नाहिं।
सीस उतारै भुइँ धरै, तब पैठे घर माहिं ॥४५॥

प्रेम न बाड़ी ऊपजै, प्रेम न हाट बिकाय।
राजा परजा जेहि रुचै, सीस देइ लै जाय ॥४६॥

प्रेम पियाला जो पियै, सीस दच्छिना देय।
लोभी सीस न दे सकै, नाम प्रेम का लेय ॥४७॥

छिनहिं चढ़ै छिन ऊतरै, सो तो प्रेम न होय।
अघट प्रेम पिंजर बसै, प्रेम कहावै सोय ॥४८॥

जब मैं था तब गुरु नहीं, जब गुरु हैं हम नाहिं।
प्रेम गली अति साँकरी, ता में दो न समाहिं ॥४९॥

जा घट प्रेम न संचरै, सो घर जान मसान।
जैसे खाल लोहार की, साँस लेत बिनु प्रान ॥५०॥

उठा बगूला प्रेम का, तिनका उड़ा अकास।
तिनका तिनका से मिला, तिन का तिन के पास ॥५१॥

सौ जोजन साजन बसै, मानो हृदय मंझार।
कपट सनेही आँगने, जानु समुन्दर पार ॥५२॥

यह तत वह तत एक है, एक प्राण दुइ गात ।
अपने जिय से जानिए, मेरे जिय की वात ॥५३॥

हम तुम्हरो सुमिरन करैं, तुम मोहिं चितवौ नाहिं ।
सुमिरन मन की प्रीति है, सो मन तुमही माहिं ॥५४॥

पीया चाहै प्रेम रस, राखा चाहै मान ।
एक म्यान में दो खड़ग, देखा सुना न कान ॥५५॥

नैनों की करि कोठरी, पुतली पलँग बिछाय ।
पलकों की चिक डारि के, पिय को लिया रिझाय ॥५६॥

जब लगि मरने से डरैं, तब लगि प्रेमी नाहिं ।
बड़ी दूर है प्रेम घर, समझ लेहु मन माहिं ॥५७॥

हरि से तू जनि हेत कर, कर हरिजन से हेत ।
माल मुलुक हरि देत हैं, हरिजन हरि ही देत ॥५८॥

कहा भयो तन वीछुरे, दूरि बसे जे वास ।
नैना ही अन्तर परा, प्राण तुम्हारे पास ॥५९॥

लाया साखि बनाय कर, इत उत अच्छर काट ।
कह कबीर कब लग जिये, जूठी पत्तल चाट ॥ ६० ॥

पानी मिलै न आपको, औरन बकसत छीर ।
आपन मन निसचल नहीं, और बँधावत धीर ॥ ६१ ॥

भारी कहूँ तो वहु डरूँ, हलका कहूँ तो झीठ ।
मैं क्या जानूँ पीव को, नैना कछू न दीठ ॥ ६२ ॥

जो देखै सो कहै नहीं, कहै सो देखै नाहिं ।
सुनै सो समझावै नहीं, रसना दृग श्रुति काहि ॥ ६३ ॥

जा मरने से जग डरै, मेरे मन आनंद ।
कब मरिहौं कब पाइहौं, पूरन परमानंद ॥ ६४ ॥

सूरा सोइ सराहिए, लड़ै धनी के हेत ।
पुरजा पुरजा होइ रहै, तऊ न छाँडै खेत ॥ ६५ ॥

सूरा सोइ सराहिए, अंग न पहिरे लोह ।
जूझै सब बँद खोलिके, छाँडै तन का मोह ॥ ६६ ॥

सिर राखे सिर जात है, सिर काटे सिर सोय ।
जैसे बाती दीप की, कटि उजियारा होय ॥ ३७ ॥

पतिवरता मैली भली, काली कुचित कुरूप ।
पतिवरता के रूप पर, वारों कोटि सरूप ॥ ६८ ॥

पतिवरता पति को भजै, और न आन सुहाय ।
सिंह बचा जो लंघना, तौ भी घास न खाय ॥ ६९ ॥

मेरा मुझ में कुछ नहीं, जो कुछ है सो तोर ।
तेरा तुझ को सौंपते, क्या लागत है मोर ॥ ७० ॥

हीरा तहाँ न खोलिए, जहँ खोटी है हाट ।
कस करि बाँधो गाठरी, उठ कर चालो बाट ।। ७१ ।।

हीरा पाया परखि के, घन में दीया आन ।
चोट सही फूटा नहीं, तब पाई पहचान ।। ७२ ।।

हंसा बगुला एक सा, मानसरोवर माहिं ।
बगा ढँढोरे माछरी, हंसा मोती खाहिं ।। ७३ ।।

चंदन गया विदेसड़े, सब कोइ कहै पलास ।
ज्यों ज्यों चूल्है झोंकिया, त्यों त्यों अधको बास ।। ७४ ।।

हीरा परा बजार में, रहा छार लपटाय ।
बहुतक मूरख चलि गए, पारखि लिया उठाय ।। ७५ ।।

जिन ढूँढा तिन पाइया, गहरे पानी पैठि ।
मैं बपुरा बूड़न डरा, रहा किनारे बैठि ।। ७६ ।।

चींटी चावल लै चली, बिच में मिल गइ दार ।
कह कबीर दोउ न मिलैं, इक लै दूजी डार ।। ७७ ।।

सत्त नाम कड़ुवा लगे, मीठा लागै दाम ।
दुविधा में दोनों गये, माया मिली न राम ।। ७८ ।।

कथनी बदनी छाँडि के, करनी सो चित लाय ।
नरहिं नीर प्याये बिना, कबहूँ प्यास न जाय ।। ७९ ।।

साँई इतना दीजिए, जामें कुटुंब समाय।
मैं भी भूखा ना रहूँ, साधु न भूखा जाय ॥८०॥

अँखियाँ तो झाँई परी, पंथ निहार निहार।
जीहड़िया छाला परा, नाम पुकार पुकार ॥८१॥

कै विरहिन को मीच दै, कै आपा दिखलाय।
आठ पहर का दाझना, मो पै सहा न जाय ॥८२॥

विरह कमण्डल कर लिये, वैरागी दो नैन।
माँगैं दरस मधूकरी, छके रहैं दिन रैन ॥८३॥

हँस हँस कंत न पाइया, जिन पाया तिन रोय।
हाँसी खेले पिय मिलैं, कौन दुहागिन होय ॥८४॥

विरहिन ओदी लाकड़ी, सपचे औ धुंधुआय।
छूट पड़ों या विरह से, जो सिगरो जरि जाय ॥८५॥

हिरदे भीतर दव बलै, धुआँ न परगट होय।
जाके लागी सो लखै, की जिन लाई सोय ॥८६॥

मूए पीछे मत मिलौ, कहै कबीरा राम।
लोहा माटी मिलि गया, तब पारस केहि काम ॥८७॥

परबत परबत मैं फिरी, नैन गँवायो रोय।
सो बूटी पायो नहीं, जाते जीवन होय ॥८८॥

कबिरा बैद बुलाइया, पकरि के देखी बाँहि।
बैद न बेदन जानई, करक करेजे माँहि ॥८९॥

प्रीतम को पतियाँ लिखूँ, जो कहुँ होय बिदेस।
तन में मन में नैन में, ताको कहा सँदेस ॥९०॥

अगिनि आँच सहना सुगम, सुगम खड़ग की धार।
नेह निभावन एक रस, महा कठिन ब्यौहार ॥९१॥

काँच कथीर अधीर नर, ताहि न उपजै प्रेम।
कह कबीर कसनी सहै, कै हीरा कै हेम ॥९२॥

दुख में सुमिरन सब करै, सुख में करै न कोय।
जो सुख में सुमिरन करै, तो दुख काहे होय ॥९३॥

सुमिरन सों मन लाइये, जैसे नाद कुरंग।
कह कबीर बिसरै नहीं, प्राण तजै तेहि संग ॥९४॥

सुमिरन सुरत लगाइ के, मुख तें कछू न बोल।
बाहर के पट देइ के, अंतर के पट खोल ॥९५॥

माला फेरत जुग गया, मिटा न मन का फेर।
कर का मनका डारि दै, मन का मनका फेर ॥९६॥

माला तो कर में फिरै, जीभ फिरै मुख माहिं।
मनुवाँ तो दहुँ दिसि फिरै, यह तो सुमिरन नाहिं ॥९७॥

कबिरा छुधा है कूकरी, करत भजन में भंग।
याको टुकड़ा डारि कै, सुमिरन करो निसंक ॥९८॥

साधू गाँठि न बाँधई, उदर समाता लेय।
आगे पीछे हरि खड़े, जब माँगे तब देय ॥९९॥

नैनों अन्तर आव तू, नैन झाँपि तोहिं लेव।
ना मैं देखौं और को, ना तोहिं देखन देव ॥१००॥

पपिहा का पन देख कर, धीरज रहे न रंच।
मरते दम जल में पड़ा, तऊ न बोरी चंच ॥१०१॥

कबिरा रेख सिंदूर अरु, काजर दिया न जाय।
नैनन प्रीतम रमि रहा, दूजा कहाँ समाय ॥१०२॥

हेत प्रीति सों जो मिलै, ताको मिलिये धाय।
अन्तर राखै जो मिलै, तासों मिलै बलाय ॥१०३॥

आसन मारे का भया, मुई न मन की आस।
ज्यों तेली के बैल को, घर ही कोस पचास ॥१०३॥

तिनका कबहुँ न निंदिए, जो पाँवन तर होय।
कबहूं उड़ि आँखिन परे, पीर घनेरी होय ॥१०४॥

मीठा सब कोइ खात है, विष ह्वै लागै धाय।
नीब न कोई पीवसी, सर्व रोग मिटि जाय ॥१०५॥

चलो चलो सब कोइ कहै, पहुँचे बिरला कोय।
एक कनक अरु कामिनी, दुरगम घाटी दोय ॥१०६॥

नारी की झाँई परत, अंधा होत भुजंग।
कबिरा तिन की कौन गति, नित नारी के संग ॥१०७॥

छिमा बड़न को चाहिए, छोटन को उत्पात।
कहा विष्णु को घटि गयो, जो भृगु मारी लात ॥१०८॥

जो जल बाढ़ै नाव में, घर में बाढ़ै दाम।
दोऊ हाथ उलीचिये, यहि सज्जन को काम ॥११०॥

चाह गई चिन्ता मिटी, मनुवाँ बेपरवाह।
जिनको कछू न चाहिए, सोई साहंसाह ॥१११॥

माँगन गए सो मरि रहे, मरे सो माँगन जाहिं।
तिन से पहले वे मरे, होत करत जो नाहिं ॥११२॥

गोधन गजधन बाजिधन और रत्न धन खान।
जब आवे सन्तोष धन, सब धन धूरि समान ॥११३॥

सब तें लघुताई भली, लघुता तें सब होय।
जस दुतिया को चन्द्रमा, सीस नवै सब कोय ॥११४॥

बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न मिलिया कोय।
जो दिल खोजौं आपना, मुझ सा बुरा न होय ॥११५॥

मूरख सों क्या बोलिये, सठ सों कहा बसाय।
पाहन में क्या मारिये, चोखा तीर नसाय ॥११६॥

रूखा सूखा खाइ कै, ठंडा पानी पी।
देखि बिरानी चूपड़ी, मत ललचावै जी ॥११७॥

कबिरा साँई मुज्झ को, रूखी रोटी देय।
चुपड़ी मांगत मैं डरूं, रूखी छीनि न लेय ॥११८॥

आधी अरु रूखो भली, सारी सों सन्ताप।
जो चाहेगा चूपड़ी, बहुत करेगा पाप ॥११९॥

मनुवाँ तो पंछी भया, उड़ि के चला अकाश।
ऊपर ही तें गिर पड़ा, या माया के पास ॥१२०॥

अपने अपने चोर को, सब कोइ डारै मार।
मेरा चोर मुझे मिलै, सरबस डारूँ वार ॥१२१॥

मन कुंजर महमंत था, फिरता गहर गम्भीर।
दुहरी तिहरी चौहरी, परि गइ प्रेम जँजीर ॥१२२॥

सुपने में साँई मिले, सोवत लिया जगाय।
आँखि न खोलूं डरपता, मत सुपना ह्वै जाय ॥१२३॥

कबिरा सोई पीर है, जो जानै पर पीर।
जो पर पीर न जानई, सो काफिर बेपीर ॥१२४॥

ऊंची जाति पपीहरा, पियै न नीचा नीर।
कै सुरपति को जाँचई, कै दुख सहै सरीर ॥१२५॥

चातक सुतहिं पढ़ावही, आन नीर मत लेय।
मम कुल यही सुभाव है, स्वाति बूँद चित देय ॥१२६॥

हे गुणवंती बेलरी, तव गुण बरणि न जाय।
जर काटे ते हरिअरी, सींचे ते कुँभिलाय ॥१२७॥

आगे आगे दव बरै, पीछे हरियर होइ।
बलिहारी वा वृच्छ की, जर काटे फल होइ ॥१२८॥

नव मन दूध बटोरि कै, टिपका किया विनास।
दूध फाटि काँजी हुआ, भया घीव का नास ॥१२९॥

एकै साधे सब सधै, सब साधे सब जाय।
जो तू सेवै मूल को, फूलै फलै अघाय ॥१३०॥

हाड़ जरै ज्यों लाकड़ी, केश जरै ज्यों घास।
सब जग जरता देखि कर, भये कबीर उदास ॥ १३१ ॥

जब लगि भक्ति सकाम है, तब लगि निष्फल सेव।
कह कबीर वह क्यों मिले, निष्कामी निज देव ॥ १३२ ॥

मांस गया पिञ्जर रहा, ताकन लागे काग।
साहिब अजहुँ न आइया, मन्द हमारे भाग ॥ १३३ ॥

प्रेम तो ऐसा कीजियो, जैसे चंद चकोर।
घींच टूटि भुइँ माँ गिरै, चितवै वाही ओर॥ १३४॥

जहाँ प्रेम तहँ नेम नहिं, तहाँ न बुधि व्यौहार।
प्रेम मगन जब मन भया, कौन गिने तिथि वार॥ १३५॥

प्रेम छिपाया नहिं छिपै, जा घट परगट होय।
जौ पै मुख बोलै नहीं, नैन देत हैं रोय॥ १३६॥

कस्तूरी कुंडल बसै, मृग ढूंढै वन माहिं।
ऐसे घट में पीव है, दुनिया जानै नाहिं॥ १३७॥

माखी गुड़ में गड़ि रही, पङ्ख रह्यौ लपटाय।
हाथ मले औ सिर धुने, लालच बुरी बलाय॥ १३८॥

पाहन पूजे हरि मिलैं तो मैं पुजौं पहार।
तातैं ये चाकी भली, पीस खाय संसार॥ १३९॥

काँकर पाथर जोरि कै, मसजिद लई चुनाय।
ता चढ़ि मुल्ला बाँग दे, वहरो हुआ खुदाय॥ १४०॥

कबिरा माला मनहिं की, और सँसारी भेख।
माला फेरे हरि मिलैं, गले रँहट के देख॥ १४१॥

मारग चलते जो गिरै, वाको नाहीं दोस।
कह कबीर बैठा रहै, ता सिर करड़े कोस॥ १४२॥

साध कहावन कठिन है, लंबा पेड़ खजूर ।
चढ़ै तो चाखै प्रेम रस, गिरै तो चकनाचूर ।। १४३ ।।

साधू भूखा भाव का, धन का भूखा नाहिं ।
धन का भूखा जो फिरै, सो तो साधू नाहिं ।। १४४ ।।

सोना सज्जन साधु जन, टूटि जुरै सौ बार ।
दुर्जन कुम्भ कुम्हार के, एकै धका दरार ।। १४५ ।।

चंदन सर्प लपेटिया, चंदन काह कराय ।
रोम रोम विष भीनिया, अमृत कहाँ समाय ।। १४६ ।।

दाग जो लागा नील का, सौ मन साबुन धोय ।
कोटि जतन परबोधिये, कागा हंस न होय ।। १४७।।

केरा तबहि न चेतिया, जब ढिग लिग बेरि ।
अब के चेते क्या भया, काँटन लीन्हों घेरि ।। १४८ ।।

आछे दिन पाछे गये, गुरु से किया न हेत ।
अब पछतावा क्या करै, चिड़ियां चुग गईं खेत ।।१४९।।

काल्ह करै सो आज कर, आज करै सो अब्ब ।
पल में परलै होयगी, बहुरि करैगा कब्ब ।। १५० ।।

कबिरा गर्व न कीजिये, अस जोबन की आस ।
टेसू फूला दिवस दस, खंखर भया पलास ।। १५१ ।।

ऐसी गत संसार की, ज्यों गाड़र की ठाट।
एक पड़ा जेहि गाड़ में, सबै जाँय तेहि वाट॥ १५२॥

दव की दाही लाकड़ी, ठाढ़ी करै पुकार।
अब जो जाउँ लुहार घर, डाहै दूजी बार॥ १५३॥

बहते को मत वहन दे, कर गहि ऐंचहु ठौर।
कहा सुना मानै नहीं, वचन कहो दुइ और॥ १५४॥

न्हाये धोये क्या भया, जो मन मैल न जाय।
मीन सदा जल में रहै, धोये वास न जाय॥ १५५॥

पंडित और मसालची, दोनों सूझे नाहिं।
औरन को कर चाँदना, आप अँधेरे माहिं॥ १५६॥

जूआ चोरी मुखबिरी, व्याज घूस पर नार।
जो चाहै दीदार को, एती बस्तु निवार॥ १५७॥

तरुवर तासु विलम्बिये, बारह मास फलंत।
सीतल छाया सघन फल, पंछी केल करंत॥ १५८॥

सुख के माथे सिलि परै, नाम हृदय से जाय।
बलिहारी वा दुक्ख की, पल पल नाम रटाय॥१५९॥

गोस्वामी तुलसीदास

गोस्वामी तुलसीदास का जन्म संवत् १५८९ वि० में बांदा जिले के राजापुर कस्बे में हुआ। इन के पिता का नाम आत्माराम दुबे और माता का नाम हुलसी था। इन का पहला नाम रामबोला था पर वैरागी होने पर तुलसीदास रक्खा।

इन का विवाह छोटी उमर में ही हो गया था। कहा जाता है कि इन का अपनी स्त्री पर बहुत अधिक प्रेम था। एक बार उस के मायके जाने पर ये भी उस के पीछे वहीं पहुंचे। इस पर स्त्री को लज्जा आई और उस ने कहा—

लाज न लागत आपु को दौरे आयहु साथ।
धिक धिक ऐसे प्रेम को, कहा कहौं मैं नाथ॥
अस्थि-चरममय देह मम, तामे जैसी प्रीति।
तैसी जो श्रीराम महँ, होति न तौ भव भीति॥

यह बात इन्हें ऐसी लगी कि उसी समय घर छोड़ कर चल दिये और काशी में आ कर वैरागी हो गये। गोस्वामी जी के हृदय में प्रेम का प्रबल प्रवाह बह रहा था। अब तक उस का झुकाव स्त्री की तरफ था परन्तु इस जरा सी बात से वह उधर से मुड़ कर श्री राम की तरफ झुक गया और अन्त तक

निरन्तर इसी दिशा में जारी रहा। इसी प्रेम-प्रवाह ने इन्हें अनन्त काल के लिए अजर अमर कर दिया। सं० १६८० वि० में इन्होंने असी और गंगा के संगम पर यह नश्वर शरीर छोड़ा।

गोस्वामी जी के महात्म्य और भक्ति के बारे में कितनी ही दन्त-कथायें प्रसिद्ध हैं। कहा जाता है कि इन्हें हनुमान जी की कृपा से श्री रामचन्द्र के दर्शन हुए थे।

इन की सारी कविता लगभग राम पर ही आश्रित है। इन का स्थान हिन्दी के सर्व श्रेष्ठ दो तीन कवियों में है। इन के ग्रन्थ निम्न लिखित हैं—

१ रामचरितमानस, २-विनय पत्रिका, ३-गीतावली, ४-दोहावली, ५-कवित्तरामायण, ६-रामाज्ञा, ७-रामलला नहछू, ८-बरवै रामायण, ९-जानकी मङ्गल, १०-वैराग्य सन्दीपनी, ११-पार्वतीमंगल, १२ कृष्ण गीतावली, १३-रामसतसई, १४-हनुमान बाहुक।

इन में रामचरितमानस सब से बड़ा और सब से अधिक प्रसिद्ध है। जितना यह सर्वप्रिय हुआ है उतना भारत में अन्य कोई ग्रन्थ नहीं हुआ। इसी एक ग्रन्थ ने तुलसीदास जी को सदा के लिए अजर अमर कर दिया है।

तुलसी यह तनु खेत है, मन वच कर्म किसान ।
पाप पुण्य द्वै बीज हैं, ववै सो लवै निदान ॥ १ ॥

तुलसी यह तनु है तवा, तपत सदा त्रय ताप ।
सांति होहि जब सांतिपद, पावै रामप्रताप ॥ २ ॥

तुलसी ऐसे कहुँ कहूँ, धन्य धरनि बहु संत ।
परकाजै परमारथी, प्रीति लिये निवहंत ॥ ३ ॥

सत्रु न काहू करि गनै, मित्र गनै नहिं काहि ।
तुलसी यह मत संत को, बोलै समता माहिं ॥ ४ ॥

सो जन जगत-जहाज है, जाके राग न दोष ।
तुलसी तृष्ना त्यागि कै, गहेउ सील संतोष ॥ ५ ॥

सील गहनि सबकी सहनि, कहनि हीय मुख राम ।
तुलसी रहिए एहि-रहनि, संत जनन को काम ॥ ६ ॥

सीतल बानी संत की, ससि हू ते अनुमान ।
तुलसी कोटि तपनि हरै, जो कोउ धारै कान ॥ ७ ॥

रैनि को भूषन इंदु है, दिवस को भूषन भानु।
दास को भूषन भक्ति है, भक्ति को भूषन ज्ञानु ॥ ८ ॥

ज्ञान को भूषन ध्यान है ध्यान को भूषन त्याग।
त्याग को भूषन शांति पद, तुलसी अमल अदाग॥ ९ ॥

सात द्वीप नौ खंड लौं, तीन लोक जग माहिं।
तुलसी सांति समान सुख, अपर दूसरो नाहिं ॥१०॥

अहंकार की अगिनि में, दहत सकल संसार।
तुलसी बांचैं संतजन, केवल सांति-अधार ॥११॥

उपल बरषि गरजत तरजि, डारत कुलिस कठोर।
चितव कि चातक मेघ तजि, कबहुँ दूसरी ओर ॥१२॥

नहिं जाचत, नहिं संग्रही, सीस नाइ नहिं लेइ।
ऐसे मानी माँगनहि, को बारिद बिन देइ ॥१३॥

डोलत बिपुल बिहंग बन, पियत पोखरिन बारि।
सुजस-धवल चातक नवल! तुही भुवन दसचारि॥१४॥

गंगा यमुना सरसुती, सात सिन्धु भरपूर।
तुलसी चातक के मते, बिन स्वाती सब धूर ॥१५॥

चरन चोंच लोचन रँगौ, चलौ मराली चाल।
छीर-नीर-बिवरण समय, बक उघरत तेहि काल ॥१६॥

नीच निचाई नहिं तजै, सज्जन हू के संग।
तुलसी चंदन-बिटप बसि, बिनु विष भये न भुअँग ॥१७॥

मनि-भाजन मधु, पारई-पूरन अमी निहारि।
का छाँडिय का संग्रहिय, कहहु बिबेक बिचारि ॥१८॥

तुलसी अपनो आचरन, भलो न लागत कासु।
तेहि न बसात जो खात नित, लहसुनहू की बासु ॥१९॥

आपु आपु कहँ सब भलो, अपने कहँ कोइ कोइ।
तुलसी सब कहँ जो भलो, सुजन सराहिय सोइ ॥२०॥

होइ भले के अनभलो, होइ दानि के सूम।
होइ कुपूत सुपूत के, ज्यों पावक में धूम ॥२१॥

जड़ चेतन गुन-दोष मय, बिस्व कीन्ह करतार।
संत हंस गुन गहहिं पय, परिहरि बारि-बिकार ॥२२॥

राकापति षोड़स उवहिं, तारागन समुदाइ।
सकल गिरिन दव लाइए, बिनु रवि राति न जाइ ॥२३॥

पर-सुख-संपति देखि सुनि जरहिं जे जड़ बिनु आगि
तुलसी तिन के भाग ते, चलै भलाई भागि ॥२४॥

तुलसी जे कीरति चहहिं, पर की कीरति खोइ।
तिन के मुंह मसि लागिहै, मिटिहि न मरिहैं धोइ ॥२५॥

नीच गुडी ज्यों जानिबो, सुनि लखि तुलसीदास।
ढीलि दिये गिरि परत महि, खैंचत चढ़त अकास ॥२६॥

तुलसी खल-बानी मधुर, सुनि समुझिय हिय हेरि।
रामराज बाधक भई, मूढ़ मंथरा चेरि ॥२७॥

जासु भरोसे सोइए, राखि गोद में सीस।
तुलसी तासु कुचाल तें, रखवारो जगदीस ॥२८॥

परद्रोही, परदार-रत, परधन, पर-अपवाद।
ते नर पाँवर पापमय, देह धरे मनुजाद ॥२९॥

दीरघ रोगी, दारिदी, कटु-बच लोलुप लोग।
तुलसी प्रान समान तउ, होहिं निरादर-जोग ॥३०॥

जोपै मूढ़ उपदेश के, होते जोग जहान।
क्यों न सुजोधन बोध कै, आए स्याम सुजान ॥३१॥

फूलै फरै न बेत, जदपि सुधा बरषहिं जलद।
मूरख हृदय न चेत, जो गुरु मिलैं बिरंचि सिव ॥३२॥

आपन छोड़ो साथ जब, ता दिन हितू न कोइ।
तुलसी अंबुज अंबु-बिन, तरनि तासु रिपु होइ ॥३३॥

तुलसी पावस के समय, धरी कोकिला मौन।
अब तो दादुर बोलिहैं, हमैं पूछिहै कौन ? ॥३४॥

का भाषा का संस्कृत, प्रेम चाहिये साँच।
काम जु आवै कामरी, का लै करै कुमाच ॥३५॥

तुलसी सब छल छाँड़िकै, कीजै राम सनेह।
अन्तर पति सों है कहा, जिन देखी सब देह ॥३६॥

असन वसन सुतनारि सुख, पापिहुँ के घर होइ।
सन्त-समागम राम-धन, तुलसी दुर्लभ दोइ ॥३७॥

तुलसी संत सुअंबु तरु, फूलि फलहिं पर हेत।
इत ते ये पाहन हनत, उत ते वे फल देत ॥३८॥

प्रेम वैर अरु पुण्य अघ, यश अपयश जय हान।
बात बीज इन सबन को, तुलसी कहहिं सुजान ॥३९॥

उरग तुरँग नारी नृपति, नर नीचो हथियार।
तलसी परखत रहब नित, इनहिं न पलटत बार ॥४०॥

दुर्जन दर्पन सम सदा, करि देखो हिय गौर।
सन्मुख की गति और है, बिमुख भये पर और ॥४१॥

राम नाम मनि दीप धरु, जीह देहरी द्वार।
तुलसी भीतर बाहिरो, जो चाहसि उजियार ॥४२॥

सूर समर करनी करहिं, कहि न जनावहिं आप।
विद्यमान रिपु पाइ रन, कायर करहिं प्रलाप ॥४३॥

मंत्री गुरु अरु वैद्य जो, प्रिय बोलहिं भय आस।
राज धर्म तन तीन कर, होइ वेगिही नास ॥४४॥

आवत हिय हर्षै नहीं, नैनन नहीं सनेह।
तुलसी तहां न जाइये, कंचन बरसे मेह ॥४५॥

तुलसी कबहुँ न त्यागिये, अपने कुल की रीति।
लायक ही सों कीजिये, ब्याह वैर अरु प्रीति ॥४६॥

जग ते रहु छत्तीस ह्वै, राम चरन छः तीन।
तुलसी देखु विचारि हिय, है यह मतौ प्रवीन ॥४७॥

सोई ज्ञानी सोइ गुनी, जन सोइ दाता ध्यानि।
तुलसी जाके चित भई, राग द्वेष की हानि ॥४८॥

तुलसी मीठे वचन तें, सुख उपजत चहुँ ओर।
बसीकरण यह मंत्र है, परिहरु वचन कठोर ॥४९॥

लगन महूरत योगबल, तुलसी गनत न काहि।
राम भये जेहि दाहिने, सबै दाहिने ताहि ॥५०॥

तौ लगि योगी जगत गुरु, जौ लगि रहत निरास।
जब आसा मन में जगी, जगगुरु योगी दास ॥५१॥

दया धर्म को मूल है, पाप मूल अभिमान।
तुलसी दया न छोड़िये, जब लगि घट में प्रान ॥५२॥

जल पय सरिस विकाइ, देखहु प्रीति कि रीति भल।
बिलग होइ रस जाइ, कपट खटाई परत ही ॥५३॥

तुलसी दुइ मंह एक ही, खेल छांड़ि छल खेलु।
कै करु ममता राम सों, कै ममता परहेलु ॥५४॥

पर उपदेश कुशल वहुतेरे
जे आचरहिं ते नर न घनेरे ॥५५॥

संत हृदय नवनीत समाना
कहा कविन पै कहइ न जाना।
निज परिताप द्रवइ नवनीता
पर दुख द्रवहिं सो संत पुनीता ॥५६॥

सेवक सुख चह मान भिखारी
व्यसनी धन सुभगति व्यभिचारी।
लोभी जस चह चारु गुमानी
नभ दुहि दूध चहत ये प्रानी। ५७॥

एहि जग जामिनि जागहिं जोगी
परमारथी प्रपंच वियोगी।
जानिय तबहि जीव जगजागा
जब सब विषय विलास विरागा ॥५८॥

राजु नीति बिनु धन बिनु धर्मा
हरिहिं समर्पे बिनु सतकर्मा ।
विद्या बिनु विवेक उपजाये
श्रम फल पढ़े किये अरु पाये ॥५९॥

संगते जती कुमंत्र तें राजा
मान तें ज्ञान पान तें लाजा ।
प्रीति प्रनय बिनु मद तें गुनी
नासहिं वेगि नीति अस सुनी ॥६०॥

धीरज धर्म मित्र अरु नारी
आपद काल परखिए चारी ॥६१॥

कविवर रहीम

ये हिन्दी के मुसलमान कवियों में सर्व श्रेष्ठ हैं। इनकी कविता अधिकतर नीति की है। छोटे छोटे दोहों में जो अद्भुत भाव इन्हों ने भर दिये हैं वैसे कबीर और विहारी को छोड़ कर और किसी कवि की कविता में नहीं दिखाई देते।

ये सम्राट् अकबर के अभिभावक और शिक्षक बैरमखां के पुत्र थे। इन का पूरा नाम अब्दुल रहीम 'खान खाना' था पर कविता में अपना उपनाम "रहीम" या "रहिमन" रखते थे। इन का जन्म संवत् १६१२ में लाहौर में हुआ। ये अकबर के प्रधान सेनापति, मन्त्री और नवरत्नों में से एक थे। अकबर भी इन का बड़ा आदर करता था। अकबर की मृत्यु के बाद ये जहांगीर के दरबार में भी रहे। पर जहांगीर ने इन का सम्मान नहीं किया, यहां तक कि राज द्रोह के अभियोग में इन को कैद भी कर दिया। इनके सब पुत्रों की मृत्यु इनके जीवन काल में ही होगई। इस तरह इनका अन्तिम जीवन बड़ा कष्टमय बीता। संवत् १६८३ में इन्हों ने इस दुःखमय नश्वर शरीर का सदा के लिए परित्याग कर दिया।

रहीम कुशल सेनापति थे, सुकवि थे, रसिक थे,

और थे दानवीर। इनका सारा जीवन लड़ाइयों में बीता। फिर भी आपकी विद्वत्ता का सिक्का सब को मानना पड़ता है। आप अरबी, फारसी, तुर्की, संस्कृत और हिन्दी के अच्छे ज्ञाता थे यहां तक कि आप ने सब भाषाओं में कविता की है। फारसी में बाबर का चरित्र और एक दीवान तथा संस्कृत में 'खेट कैतुकम्' नामक ज्योतिष ग्रन्थ के अतिरिक्त हिन्दी में इन्हों ने निम्न लिखित ग्रन्थ लिखे हैं :-

रहीम सतसई, बरवै नायिका भेद, मदनाष्टक, रासपंचाध्यायी, शृंगार सोरठा, नगर शोभा वर्णन।

इनकी कविता में भाषा का आडम्बर इतना नहीं है जितना भावों का चमत्कार है। इनकी जितनी कविता मिलती है उस से ये प्रतिभाशाली कवि मालूम पड़ते हैं, इन का बरवै नायिका भेद शृंगार रस की उत्कृष्ट रचना है। हिन्दी साहित्य के प्रेम ने ही मुसलमान होते हुऐ भी इन्हें हिन्दु धर्म से प्रेम करने के लिए विवश किया।इनकी कविता में हिन्दु धर्म तथा भगवान कृष्ण के प्रति अत्यधिक श्रद्धापूर्ण वचन मिलते हैं।

दानवीर इतने थे कि इन्हों ने कविवर गंग को एक पद पर ३६ लाख रुपये दे दिये थे। अन्त में इसी दान वीरता के कारण इन्हें गरीबी के दिन देखने पड़े।

धूर उड़ावत सीस पर, कहु रहीम केहि काज।
जेहि रज मुनिपत्नी तरी, सो ढूंढत गजराज ॥ १ ॥

जे गरीब सों हित करें, धनि रहीम वे लोग।
कहा सुदामा बापुरो, कृष्ण-मिताई जोग ॥ २ ॥

दिव्य दीनता के रसहिं, का जाने जग अंधु।
भली विचारी दीनता, दीन-बन्धु से वन्धु ॥ ३ ॥

जो रहीम करिबो हुतो, व्रज को यही हवाल।
तौ नाहक कर पर धर्यो, गोबर्धन गोपाल ॥ ४ ॥

दीन सबन को लखत है, दीनहिं लखै न कोइ।
जो रहीम दीनहिं लखै, दीनबन्धु सम होइ ॥ ५ ॥

कमला थिर न रहीम कहि, यह जानत सब कोइ।
पुरुष पुरातन की बधू, क्यों न चञ्चला होइ ॥ ६ ॥

मांगे घटत रहीम पद, कितौ करौ बढ़ि काम।
तीन पैड़ बसुधा करि, तऊ बावने नाम ॥ ७ ॥

कहि रहीम इक दीप ते, प्रकट सबै निधि होइ।
तनु सनेह कैसे दुरै, दृग दीपक जरु दोइ ॥ ८ ॥

तरुवर फल नहिं खात हैं, सरवर पियहिं न पानि।
कहि रहीम पर काज हित, सम्पति सँचहिं सुजानि ॥९॥

कहि रहीम धन बढ़ि घटे, जात धनिन की बात।
घटै बढ़ै उन कर कहा, घास बेंचि जे खात ॥१०॥

दुरदिन परे रहीम कहि, भूलत सब पहचानि।
सोच नहीं वित हानि को, जो न होय हित हानि ॥११॥

जे रहीम विधि बड़ किये, को कहि दूषन काढ़ि।
चन्द्र दूबरो कूबरो, तऊ नखत ते बाढ़ि ॥१२॥

ये रहीम घर घर फिरैं, माँगि मधुकरी खाहिं।
यारो यारी छोड़ दो, अब रहीम वे नाहिं ॥१३॥

सर सूखे पंछी उड़ैं, औरे सरन समाहिं।
दीन मीन बिन पच्छ के, कहु रहीम कहँ जाहिं ॥१४॥

यों रहीम सुख दुख सहत, बड़े लोग सह साँति।
उवत चंद जेहि भाँति सो, अथवत ताहि भाँति ॥१५॥

कहि रहीम सम्पति सगे, बनत बहुत बहु रीत।
बिपत-कसौटी जे कसे, सोई साँचे मीत ॥१६॥

तब ही लग जीबो भलो, जीबो परै न धीम।
बिन दीबो जीबो जगत, हमहिं न रुचै रहीम ॥१७॥

रहिमन देखि बड़ेन को, लघु न दीजिये डारि।
जहां काम आवे सुई, कहा करै तरवारि ॥१८॥

धनि रहीम गति मीन की, जल बिछुरत जिय जाय।
जियत कंज तजि अंत बसि, कहा भौंर कर भाय॥१९॥

रहिमन अति नहिं कीजिए, गहि रहिये निज कानि।
अतिसै फूलो सहिजनो, डार पात कै हानि ॥२०॥

खीरा सिर तें काटि कै, मलियत नमक लगाइ।
रहिमन करुए मुखन को, चहियत इहै सजाइ ॥२१॥

नैन सलोने अधर-मधु, कहु रहीम घटि कौन।
मीठो भावे लौन पर, अरु मीठे पर लौन ॥२२॥

रहिमन कहत सुपेट सों, क्यों न भयो तू पीठि।
रीते अनरीते करत, भरे बिगारत दीठि ॥२३॥

जो रहीम उत्तम प्रकृति, का करि सके कुसंग।
चन्दन बिष व्यापत नहीं, लपिटे रहत भुजंग ॥२४॥

रहिमन यह न सराहिये, लेन देन कै प्रीति।
प्रानन बाजी राखिये, हार होय कै जीति ॥२५॥

आप न काहू काम के, डार पात फल फूल ।
औरन को रोकत फिरैं, रहिमन पेड़ बबूल ॥२६॥

यह रहीम निज संग लै, जनमत जगत न कोय ।
बैर,प्रीति,अभ्यास, जस, होत होत ही होय ॥२७॥

प्रीतम छवि नैनन बसी, पर छवि कहाँ समाय ।
भरी सराय रहीम लखि, आप पथिक फिरि जाय ॥२८॥

कौन बड़ाई जलधि मिलि, गंग नाम भो धीम ।
केहि कै प्रभुता ना घटी, पर घर गये रहीम ॥२९॥

मान सरोवर ही मिले, हंसनि मुक्ता भोग ।
सफरिन भरे रहीम सर, बक बालकनहि जोग ॥३०॥

जिहि रहीम तन मन लियो, कियो हिये बिच भौन ।
तासों दुख सुख कहन की, रही बात अब कौन ॥३१॥
ज्यों रहीम गति दीप की, कुल कुपूत गति सोय ।
बारे उजियारो लगे, बढ़े अंधेरो होय ॥३२॥

अनुचित उचित रहीम लघु, करहिं बड़न के जोर ।
ज्यों ससि के संयोग ते, पचवत आगि चकोर ॥३३॥

धनि रहीम जल पंक कहँ, लघु जिय पियत अघाय
उदधि बड़ाई कौन है, जगत पियासो जाय ॥३४॥

नाद रीझि तन देत मृग, नर धन हेत समेत।
ते रहीम पसु ते अधिक, रीझेहु कछू न देत ॥३५॥

रहिमन नीचन संग बसि, लगत कलंक न काहि।
दूध कलारिन हाथ लखि, मद समुझहिं सब ताहि॥३६॥

रहिमन अब वे बिरिछ कहँ, जिनकी छाँह गँभीर।
बागन बिच बिच देखियत, सेंहुड़ कंज करीर।३७॥

मुक्ता कर करपूर कर, चातक जीवन जोय।
एतो बड़ो रहीम जल, व्याल-बदन बिष होय ॥३८॥

ससि की शीतल चाँदनी, सुन्दर सबहिं सुहाय।
लगे चोर चित में लटी, घटि रहीम मन आय ॥३९॥

रहिमन अँसुवा नयन ढरि, जिय दुख प्रकट करेइ।
जाहि निकारो गेह ते, कस न भेद कहि देइ ॥४०॥

गुन ते लेत रहीम जन, सलिल कूप ते काढ़ि।
कूपहु ते कहुं होत है, मन काहू को बाढ़ि ॥४१॥

रहिमन मन महाराज के, दृग सों नहीं दिवान।
जाहि देखि रीझे नयन, मन तेहि हाथ बिकान ॥४२॥

जाल परे जल जात बहि, तजि मीनन को मोह।
रहिमन मछरी नीर को, तऊ न छाड़ति छोह ॥४३॥

धन दारा अरु सुतन में, रहत लगाये चित्त।
क्यों रहीम खोजत नहीं, गाढ़े दिन को मित्त ॥४४॥

खैर, खून, खांसी, खुसी, बैर, प्रीति मद-पान।
रहिमन दावे ना दबैं, जानत सकल जहान ॥४५॥

अब रहीम मुसकिल परी, गाढ़े दोऊ काम।
साँचे से तो जग नहीं, झूठे मिलै न राम ॥४६॥

अंतर दाव लगी रहै, धुँआं न प्रगटै सोय।
कै जिय जाने आपुनो, जा सिर बीती होय ॥४७॥

गुरुता फबै रहीम कहि, फबि आई है जाहि।
उर पर कुच नीके लगैं, अनत बतौरी आहि ॥४८॥

काह करौं बैकुंठ लै, कल्प वृक्ष की छाँह।
रहिमन ढाक सुहावनो, जो गल प्रीतम-बाँह ॥४९॥

बिगरी बात बनै नहीं, लाख करो किन कोय।
रहिमन बिगरे दूध को, मथे न माखन होय ॥५०॥

रहिमन निज मन की बिथा, मन ही राखो गोय।
सुनि अठिलैहैं लोग सब, बाँटि न लैहै कोय ॥५१॥

अब रहीम चुप करि रहो, समुझि दिनन कर फेर।
जब नीके दिन आइहैं, बनत न लगिहैं बेर ॥५२॥

नात नेह दूरो भलो, लो रहीम जिय जानि ।
निकट निरादर होत है, ज्यों गड़ही को पानि ॥५३॥

रहिमन प्रीति सराहिए, मिले होत रंग दून ।
ज्यों जरदी हरदी तजै, तजै सफेदी चून ॥५४॥

यद्यपि अवनि अनेक हैं, तोयवन्त सरि ताल ।
रहिमन एकै मानसर, मनसा करत मराल ॥५५॥

मान सहित विष खाय कै, संभु भये जगदीस ।
बिन आदर अमृत भख्यो, राहु कटायो सीस ॥५६॥

रहिमन खोजो ऊख में, जहां रसन की खानि ।
जहां गाँठ तहँ रस नहीं, यही प्रीति की हानि ॥५७॥

रहिमन धागा प्रेम को, मत तोरो चटकाय ।
टूटे से फिरि ना मिले, मिले गाँठ परि जाय ॥५८॥

रहिमन इक दिन वे रहे, बीच न सोहत हार ।
वायु जो ऐसी वह गई, बीचन परे पहार ॥५९॥

रहिमन रिस को छोड़िकै, करो गरीबी भेस ।
मीठे बोलौ नै चलो, सबै तुम्हारो देस ॥६०॥

जलहि मिलाय रहीम ज्यों कियो आप सम छीर ।
अँगवहि आपुहि आप त्यों, सकल आँच की भीर ॥६१॥

बरु रहीम कानन बसौ, असन करिय फल तोय।
बन्धु मध्य धन हीन ह्वै, बसिबो उचित न होय॥६२॥

रहिमन मैं या पेट सों, बहुत कहेउ समुझाय।
जो तू अनखाये रहे, कब कोऊ अनखाय॥६३॥

रहिमन घरिया रहँट की, त्यों ओछे की डीठि।
रीतिहि सन्मुख होति है, भरी दिखावे पीठि॥६४॥

रूप कथा पद चारु पट, कंचन दोहा लाल।
ज्यों ज्यों निरखत सूक्ष्म गति, मोल रहीम बिसाल॥६५॥

यों रहीम जग मारियो, नैन बान की चोट।
भगत भगत कोइ बचि गए, चरण कमल की ओट॥६६॥

रहिमन करि सम बल नहीं, मानत प्रभु की धाक।
दाँत दिखावत दीन ह्वै, चलत घिसावत नाक॥६७॥

जहाँ गांठ तहँ रस नहीं, यह जानत सब कोय।
मँड़ए तर को गांठ में, गाँठि-गाँठि रस होय॥६८॥

रहिमन बहु भेषज करत, व्याधि न छाँड़त साथ।
खग मृग बसत अरोग बन, हरि अनाथ के नाथ॥६९॥

रहिमन गली है सांकरी, दूजो ना ठहराहिं।
आपु अहैं तो हरि नहीं, हरि तो आपुन नाहिं॥७०॥

रहिमन ब्याह बिआधि है, सकहु तो जाहु बचाय।
पाँयन बेड़ी परत है, ढोल बजाय बजाय ॥७१॥

रहिमन तब लगि ठहरिये, दान मान सनमान।
घटत मान देखिय जबहिं, तुरतहि करिय पयान ॥७२॥

मूढ़ मंडली में सुजन, ठहरत नाहिं बिसेखि।
स्याम कचन में सेत ज्यों, दूरि कीजिअत देखि।७३॥

रहिमन असमय के परे, हित अनहित ह्वै जायि।
बधिक बधे मृग बान सों, रुधिरै देत बताय ॥७४॥

ज्यों नाचत कठपूतरी, करम नचावत गात।
अपने हाथ रहीम ज्यों, नहीं आपुने हाथ ॥७५॥

रहिमन गठरी धूरि की, रही पवन ते पूरि।
गांठि युक्ति की खुल गई, अंत धूरि की धूरि ॥७६॥

रहिमन यह तनु सूप है, लीजै जगत पछोर।
हलुकन को उड़ि जानदै, गरुए राखि बटोर ॥७७॥

टूटे सुजन मनाइये, जो टूटे सौ बार।
रहिमन फिरि-फिरि पोइये, टूटे मुक्ताहार ॥७८॥

चढ़ि कै मैन-तुरंग पर, चलिबो पावक माँहिं।
प्रेम-पंथ ऐसो कठिन, सब कोउ निबहत नाहिं ॥७९॥

रहिमन मारग प्रेम को, बिन बूझे मति जाव।
जो डिगिहै तो फिर कहूँ, नहिं धरिबे को पाँव ॥८०॥

पात-पात कर सींचिबो, बरी-बरी कर लौन।
रहिमन ऐसी बुद्धि ते, काज सरैगो कौन ॥८१॥

रहिमन जो तू कहत है, संगति ही गुन होय।
बीच उखारी रसमरा, रस काहे ना होय ॥८२॥

रहिमन तीर की चोट से, चोट खाय बचि जाय।
नैन बान की चोट ते, धन्वंतरि न बचाय ॥८३॥

रहिमन जिह्वा बावरी, कहि गई सरग पताल।
आपु तो कहि भीतर भई, जूती खात कपाल ॥८४॥

सुलगे जे ते बुझि गये, बुझे ते सुलगे नाहिं।
रहिमन दाहे प्रेम के, बूझि-बूझि सुलगाहिं ॥८५॥

विपति भये धन ना रहे; होय जो लाख करोर;
नभ तारे छिपि जात हैं, जिमि रहीम भय भोर ॥८६॥

बड़े बड़ाई ना करैं, बड़े न बोलैं बोल।
रहिमन हीरा कब कहे, लाख टका है मोल ॥८७॥

सौदा करो सो करि चलो, रहिमन याही हाट।
फिर सौदा पैहो नहीं, दूरि जान है बाट ॥ ८॥

धन थोरो इज्जत बड़ी, कहि रहीम का बात ।
जैसे कुल की कुलबधू, चिथरन माँहि सुहात ॥८९॥

कहि रहीम या जगत तें, प्रीति गई दै टेरि ।
अब रहीम नर नीच में, स्वारथ स्वारथ हेरि ॥९०॥

रहिमन कठिन चिताहु ते, चिन्ता कहँ चित चेत ।
चिता दहति निर्जीव कहँ, चिन्ता जीव समेत ॥९१॥

निज कर क्रिया रहीम कहि, सिधि भावी के हाथ ।
पाँसे अपने हाथ में, दाँव न अपने हाथ ॥९२॥

थोथे बादर कार के, ज्यों रहीम घहरात ।
धनी पुरुष निर्धन भये, करें पाछिली बात ॥९३॥

देनहार कोउ और है, भेजत सो दिन रैन ।
लोग भरम हम पै धरैं, याते नीचे नैन ॥९४॥

विधिना यह जिय जानि कै, सेसहिं दिए न कान ।
धरा मेरु सब डोलिहैं, तानसेन की तान ॥९५॥

मीन काटि जल धोइये, खाये अधिक पियास ।
रहिमन प्रीति सराहिये, मुयेउ मीत की आस ॥९६॥

रहिमन पानी राखिए, बिन पानी सब सून ।
पानी गए न ऊबरै, मुकता मानुस चून ॥९७॥

रहिमन रहिबो वां भलो, जौ लौं सील समूच।
सील ढील जब देखिये, तुरत कीजिये कूच ॥९८॥

समय परे ओछे वचन, सब के सहउ रहीम।
सभा दुसासन पट गहे, गदा रहे गहि भीम ॥९९॥

सदा नगारा कूच का, बाजत आठों जाम।
रहिमन या जग आइ कै, को करि रहा मुकाम ॥१००॥

रहिमन दानि दरिद्रतर, तऊ जांचिवे जोग।
ज्यों सरितन सूखा परे, कुँआ खुदावत लोग ॥१०१॥

अंजन दियो तो किरकिरी, सुरमा दियो न जाय।
जिन आँखिन सो हरि लख्यो, रहिमन बलिवलि जाय१०२

कदली, सीप, भुजंग-मुख, स्वाति एक गुण तीन।
जैसा संगति बैठिए, तैसोई फल दीन ॥१०३॥

करमहीन रहिमन लखो, धँस्यो बड़े घर चोर।
चिन्तत ही वड़ लाभ के, जागत ह्वै गो भोर ॥१०४॥

कैसे निवहै निबलजन, करि सबलन सों गैर।
रहिमन बसि सागर विषे, करत मगर सों वैर ॥१०५॥

गरज आपनी आप सों, रहिमन कही न जाय।
जैसे कुल की कुलवधू, पर-घर जात लजाय ॥१०६॥

जो घरही में घुसि रहे, कदली सुपत सुडील।
तो रहीम तिनते भले, पथ के अपत करील ॥१०७॥

बसि कुसंग चाहत कुसल, यह रहीम जिय सोस।
महिमा घटी समुद्र की, रावन बस्यो परोस ॥१०८॥

रहिमन ओछे नरन सों, वैर भलो ना प्रीति।
काटे चाटे स्वान के, दोउ भांति विपरीत ॥१०९॥

रहिमन तीन प्रकार ते, हित अनहित पहचानि।
परबस परे, परोस बस, परे मामिला जानि ॥११०॥

जो रहीम ओछो बढ़ै, सो अति ही इतराय।
प्यादे सों फरजी भयो, टेढ़ो टेढ़ो जाय ॥१११॥

राम न जाते हरिन सँग, सीय न रावन साथ।
जो रहीम भावी कतहुं, होति आपने हाथ ॥११२॥

बड़े पेट के भरन में, है रहीम दुख बाढ़ि।
याते हाथी हहरि के, दये दांत द्वै काढ़ि ॥११३॥

यों रहीम सुख होत है, बढ़त देखि निज गोत।
ज्यों बड़री अखियां निरखि, आँखिनको सुख होत ॥११४॥

शशि सकोच साहस सलिल, मान सनेह रहीम।
बढ़त बढ़त बढ़ि जात है, घटत घटत घटि सीम ॥११५॥

दुरदिन परे रहीम कहि, दुरथल जैयत भागि।
ठाढ़े हूजत घूर पर, जब घर लागत आगि ॥११६॥

सब कोऊ सब सों करैं, कै सलाम कै राम।
हित रहीम तब जानिये, जा दिन अटके काम ॥११७॥

अमृत ऐसे वचन में, रहिमन रिस की गांस।
जैसे मिसिरिहु में मिली, निरस बाँस की फाँस ॥११८॥

रहिमन लाख भली करौ, अगुनी अगुन न जाय।
राग सुनत पय पियत हू, साँप सहज धरि खाय ॥११९॥

मथत मथत माखन रहै, दही मही बिलगाय।
रहिमन सोई मीत है, भीर परे ठहराय ॥१२०॥

रहिमन प्रीति न कीजिए, जस खीरा ने कीन।
ऊपर से तो दिल मिला, भीतर फाँके तीन ॥१२१॥

रहिमन भेषज के किए, काल जीति जो जात।
बड़े बड़े समरथ भए, तौ न कोउ मरि जात ॥१२२॥

रहिमन विद्या बुद्धि नहिं, नहीं धरम जस दान।
भू पर जनम वृथा धरै, पसु बिन पूंछ विषान ॥१२३॥

समय पाय फल होत है, समय पाय झरि जात।
सदा रहै नहिं एक सी, का रहीम पछतात ॥१२४॥

महि नभ सर पंजर कियो, रहिमन बल अवसेष।
सो अर्जुन बैराट घर, रहे नारि के भेष ॥१२५॥

जिहि अंचल दीपक दुरयो, हन्यो सो ताही गात।
रहिमन असमय के परे, मित्र शत्रु ह्वै जात ॥१२६॥

दादुर मोर किसान मन, लग्यो रहे घन माहिं।
पै रहीम चातक रटनि, सरवर को कोउ नाहिं ॥१२७॥

रहिमन याचकता गहे, बड़े छोट ह्वै जात।
नारायन हू को भयो, बावन आँगुर गात ॥१२८॥

अमी हलाहल मद भरे, श्वेत श्याम रतनार।
जियत मरत झुकि झुकि परत जिहि चितवत इक बार ॥

रहिमन चाक कुम्हार को, माँगे दिया न देइ।
छेद में डंडा डारि कै, चहै नाँद लै लेइ ॥१३०॥

रहिमन विपदा तू भली, जो थोरे दिन होय।
हित अनहित या जगत में, जानि परत सब कोय ॥१३१॥

तैं रहीम मन आपनो, कीन्हों चारु चकोर।
निसि बासर लाग्यो रहै, कृष्ण चन्द्र की ओर ॥१३२॥

रहिमन मोहिं न सुहाय, अमी पियावत मान बिनु।
बरु विष देय बुलाय, मान सहित मरिबो भलो॥१३३॥

रहिमन जगकी रीति, मैं देख्यो रस ऊख में।
ताहू में परतीति, जाँह गाँठ तहँ रस नहीं ॥१३४॥

ओछे को सतसंग, रहिमन तजहु अँगार ज्यों।
ताते जारै अंग, सीरे पै कारो करै ॥१३५॥

जाके सिर अस भार, सो कस झोंकत भार अस।
रहिमन उतरै पार, भार झोंकि सब भार में॥१३६॥

टूटि ठाट घर टपकत, खटियौ टूटि।
पिय की बांह उसिसवाँ, सुख की लूटि ॥१३७॥

बिरहिनको सब भाखत, अब जनि रोय।
पीर पराई जानै, तब कहु कोय ॥१३८॥

कोटि जतन हू फिरत ना, बिधि की बात।
चकवा पिंजरे हू सुनि, बिमुख बसात ॥१४०॥

महाकवि बिहारीलाल

महाकवि बिहारीलाल का जन्म कब और कहां हुआ यह बिलकुल निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। अनुमानतः इन का जन्म संवत् १६६० में और मृत्यु संवत् १७२० में हुई। ये जाति के चौबे ब्राह्मण थे। जन्म-स्थान ग्वालियर के निकट "बसुआ-गोविन्दपुर" ग्राम कहा जाता है। इन के पिता का नाम केशवराय था।

यह समझा जाता है कि इन का बचपन बुन्देल खंड में बीता और जवानी में ये मथुरा चले आये जहाँ इनकी ससुराल था। ससुराल में कुछ अपमानित होने के कारण ये जयपुर चले गये और वहां महाराज जयसिंह के दरबार में रहे। दरबार में इन का अच्छा मान था। एक बार जयसिंह अपनी छोटी रानी के प्रेम में इतने मस्त होगये कि उन्होंने बाहर आना ही छोड़ दिया। इस पर कविवर बिहारी लाल ने उनके पास निम्न लिखित दोहा लिख कर भेजा—

नहिं पराग, नहिं मधुर मधु, नहिं विकास इह काल।
अलो कली ही ते बंध्यो, आगे कौन हवाल॥

इस को पढ़ कर महाराज को होश हुआ और वे बाहर आये। उस दिन से इन का मान दरबार में और

भी बढ़ गया। कहा जाता है कि इन्हें प्रत्येक दोहे पर एक अशर्फी मिलती थी।

इन की 'बिहारीसतसई' नामक केवल एक ही पुस्तक मिलती है। इसमें लगभग सवा सात सौ दोहे हैं। यह पुस्तक अपने ढंग की एक ही है। शृङ्गाररस का ऐसा अपूर्व ग्रन्थ दूसरा नहीं मिलता। इस छोटे से ग्रन्थ में कवि ने गागर में सागर भर दिया है—कविता के प्रायः सभी अंग इस में आगये हैं। एक एक दोहे की छोटी सी डिबिया में इन्होंने जो भाव भर दिये हैं दूसरे कवि उन्हें बड़े बड़े छन्दों में भी उस तरह नहीं ला सके। इस की लोकप्रियता इसी से समझी जा सकती है कि इस पर लगभग ३० टीकायें हो चुकी हैं। कितने ही कवियों ने इस के दोहों पर सवैये और कुण्डलियां बनाई हैं। संस्कृत और उर्दू में इस का उल्था हो चुका है। रामचरित-मानस को छोड़ कर हिन्दी का और कोई काव्य ग्रन्थ इतना लोकप्रिय नहीं हुआ। शृङ्गारी कवि होते हुए भी बिहारी ने अपने ग्रंथ में स्थान स्थान पर नीति, भक्ति और वैराग्य आदि के जो दोहे लिखे हैं वे अनूठे हैं। यहां उन्हीं में से कुछ चुने हुए दोहे दिये जा रहे हैं।

तन्त्री-नाद, कवित्त-रस, सरस राग, रति-रंग।
अनबूड़े बूड़े, तरे जे बूड़े सब अंग ॥ १ ॥

या अनुरागी चित्त की, गति समुझै नहिं कोय।
ज्यों ज्यों बूड़े श्याम रंग, त्यों त्यों उज्ज्वल होय ॥ २ ॥

नेह न नैननि को कछू, उपजी बड़ी बलाय।
नीर भरे नित प्रति रहें, तऊ न प्यास बुझाय ॥ ३ ॥

जिन दिन देखे वे कुसुम, गई सुबीत बहार।
अब अलि रही गुलाब में, अपत कटीली डार ॥ ४ ॥

इहि आसा अटक्यो रहै, अलि गुलाब के मूल।
ह्वै हैं बहुरि बसन्त ऋतु, इन डारन वे फूल ॥ ५ ॥

सरस कुसुम मँडरात अलि, न झुकि झपटि लपटात।
दरसत अति सुकुमारता, परसत मन न पत्यात ॥ ६ ॥

कर लै सूंघि सराहि कै, सबै रहै गहि मौन।
गंधी अंध गुलाब को, गँवई गाहक कौन ॥ ७ ॥

अरे हंस या नगर में, जैयौ आप विचारि।
कागनि सों जिन प्रीति करि, कोकिल दई विडारि ॥ ८॥

वे न यहां नागर बड़े, जिन आदर तो आव।
फूल्यो अनफूल्यो भयो, गँवई गांव गुलाव ॥ ९ ॥

चले जाहु ह्यां को करत, हाथिन को व्यौपार।
नहिं जानत या पुर वसत, धोबी ओड़ कुम्हार ॥१०॥

करि फुलेल को आचमन, मीठो कहत सराहि।
रे गंधी मति अंध तू, अतर दिखावत काहि ॥११॥

कनक कनक ते सौ गुनी, मादकता अधिकाय।
वा खाये बौरात है, या पाये बौराय ॥१२॥

गिरि ते ऊंचे रसिक-मन, बूड़े जहां हज़ार।
वहै सदा पसु नरन कहँ, प्रेम पयोधि पगार ॥१३॥

चटक न छाँड़त घटत हू, सज्जन नेह गम्भीर।
फीको परै न, वरु फटै, रंग्यौ चोल-रंग चीर ॥१४॥

न ये विससिये लखि नये, दुर्जन दुसह सुभाय।
आँटे परि प्राणन हरैं, काँटे लौं लगि पाय ॥१५॥

जेती सम्पति कृपन की, तेती सूमति जोर।
बढ़त जात ज्यों ज्यों उरज, त्यौं त्यौं होत कठोर ॥१६॥

नीच हिये हुलसो रहै, गहै गेंद को पोत।
ज्यों ज्यों माथे मारिये, त्यों त्यों ऊंचो होत ॥१७॥

कबौं न ओछे नरन सों, सरत बड़न को काम।
मढ़ो दमामा जात कहुँ, कहि चूहे के चाम ॥१८॥

कोटि जतन कोऊ करौ, परै न प्रकृतिहिं वीच।
नल बल जल ऊंचो चढ़े, तऊ नीच को नीच ॥१९॥

दुसह दुराज प्रजानि को, क्यों न बढ़ै अति दंद।
अधिक अंधेरो जग करै, मिलि मावस रवि चंद ॥२०॥

बसै बुराई जासु मन, ताही को सनमान।
भलो भलो कहि छोड़िये, खोटे ग्रह जपदान ॥२१॥

कहैं इहै सब श्रुति स्मृति, इहै सयाने लोग।
तीन दबावत निसक ही, पातक राजा रोग ॥२२॥

ओछे बड़े न ह्वै सकैं, कहि सतरोहैं बैन।
दीरघ होहिं न नेकहू, फारि निहारे नैन ॥२३॥

बड़े न हूजै गुनन बिन, विरद बड़ाई पाय।
कहत धतूरे सों कनक, गहनो गढ़ो न जाय ॥२४॥

संगति सुमति न पावही, परे कुमति के धंध।
राखो मेलि कपूर में, हींग न होत सुगंध ॥२५॥

सबै हसत करतारि दै, नागरता के नाँव ।
गयो गरब गुन को सबै, बसे गंवारे गाँव ॥२६॥

नर की अरु नलनीर की, गति एकै करि जोइ ।
जेतो नीचो ह्वै चलै, तेतो ऊँचो होइ ॥२७॥

बढ़त बढ़त सम्पति सलिल, मन सरोज बढ़ि जाय ।
घटत घटत सु न फिरि घटै, बरु समूल कुम्हिलाय ॥२८॥

जो चाहो चटक न घटै, मैलो होय न मित्त ।
रज राजस न छुवाइये, नेह चीकने चित्त ॥२९॥

मीत न नीत गलीत ह्वै, जो धरिये धन जोरि ।
खाये खरचे जो जुरै, तो जोरिये करोरि ॥३०॥

घर घर डोलत दीन ह्वै, जन जन जांचत जाय ।
दिये लोभ चसमा चखन, लघु हू बड़ो लखाय ॥३१॥

सोहत संग समान को, इहै कहत सब लोग ।
पान पीक ओठन बनै, काजर नैनन जोग ॥३२॥

बुरो बुराई जो तजै, तो चित खरो सकात ।
ज्यों निकलंक मयंक लखि, गनैं लोग उत्पात ॥३३॥

वहकि बड़ाई आपनी, कत राचति मति भूल ।
बिन मधु मधुकर के हिये, गड़े न गुड़हर फूल ॥३४॥

को कहि सकै बड़ेन सों, लखे बड़ी हू भूल।
दीने दई गुलाब को, इन डारन वे फूल ॥३५॥

पट पाँखे भखु काँकरे, सदा परेई संग।
सुखी परेवा जगत में, एकै तुही विहंग ॥३६॥

स्वारथ सुकृत न श्रम वृथा, देखु विहंग विचार।
बाज पराये पानि पर, तू पंछी हि न मार ॥३७॥

दिन दस आदर पाय कै, करि लै आपु बखान।
जौ लौं काग सराध-पख, तौ लौं तो सनमान ॥३८॥

मरत प्यास पिंजरा परो, सुवा दिनन के फेर।
आदर दै दै बोलियत, वायस बलि की बेर ॥३९॥

जाके एकौ एकहू, जग व्यवसाय न कोय।
सो निदाघ फूलै फलै, आक डहडहो होय ॥४०॥

नहिं पावस ऋतुराज यह, सुनु तरवर मति भूल।
अपत भये बिन पाइहै, क्यों नवदल फल फूल ॥४१॥

सीतलता अरु सुगंध की, महिमा घटी न मूर।
पीनसवारे जो तज्यो, सोरा जानि कपूर ॥४२॥

जो सिर धरि महिमा मही, लहियत राजा-राव।
प्रगटत जड़ता आपनी, मुकुट पहिरियत पाँव ॥४३॥

या भव पारावार को, उलँघि पार को जाय।
तिय-छवि-छाया ग्राहिनी, गहै बीच ही आय ॥४४॥

जगत जनायो जिहि सकल, सो हरि जान्यो नाहिं।
ज्यों आँखिन सब देखियत, आँखि न देखी जाहिं ॥४५॥

को छूटयो यहि जाल परि, कत कुरंग अकुलात।
ज्यों ज्यों सुरझि भज्यो चहत, त्यों त्यों उरझत जात॥४६॥

जप माला छापा तिलक, सरै न एकौ काम।
मन काँचे नाचे वृथा, साँचै राँचै राम ॥४७॥

मैं समुझ्यौ निरधार, यह जग काँचो काँच सो।
एकै रूप अपार, प्रतिबिंबित लखियत जहां ॥४८॥

तौ लगि या मन सदन में, हरि आवें किहि बाट।
विकट जुटै जौ लौं निपट, खुलैं न कपट कपाट ॥४९॥

भजन कह्यो तासों भज्यो, भज्यो न एको बार।
दूरि भजन जासों कह्यौ, सो तू भज्यो गंवार ॥५०॥

दूरि भजत प्रभु पीठि दै, गुन विस्तारन काल।
प्रगटत निर्गुन निकट ही, चंग रंग गोपाल ॥५१॥

दीरघ साँस न लेहि दुख, सुख साईं मति भूल।
दई दई क्यों करत है, दई दई सुकबूल ॥५२॥

थोरेई गुन रीझते, बिसराई वह बानि।
तुम हू कान्ह मनो भये, आज-कालि के दानि ।।५३।।

कब को टेरत दीन ह्वै, होत न श्याम सहाय।
तुम हू लागी जगत-गुरु, जगनायक जगबाय ।।५४।।

समै पलटि पलटै प्रकृति, को न तजै निज चाल।
भो अकरुन करुना करौ, यहि कुपूत कलिकाल ।।५५।।

करौ कुबत जग कुटिलता, तजौं न दीनदयाल।
दुखी होहुगे सरल चित, दसत त्रिभंगी लाल ।।५६।।

कोऊ कोरिक संग्रहौ, कोऊ लाख हज़ार।
मो संपति जदुपति सदा, विपति-बिदारन हार ।।५७।।

कविवर वृन्द

इनका जन्म काल सं० १७२० या १७२५ के लगभग समझना चाहिये। इनके लिखे तीन ग्रन्थ मिलते हैं-भाव पंचाशिका, शृङ्गार-शिक्षा और दृष्टान्त सतसई या वृन्द-सतसई। दृष्टान्त सतसई के अन्त में उस का निर्माण काल सं० १७६१ दिया है। भाव पंचाशिका और शृङ्गार-शिक्षा का निर्माण काल क्रमशः १७४३ और १७४८ हैं। इन्हीं पुस्तकों के निर्माण काल से इनके जन्मकाल का अनुमान किया गया है।

ये औरंगजेब के दरबारी कवि थे। औरंगजेब का पोता अजीमुश्शान, जो उस समय बिहार व उड़ीसा का गवर्नर था, उर्दू और ब्रजभाषा का अच्छा कवि और कवियों का आश्रयदाता था। उसने औरंगजेब से कविवर वृन्द को मांग लिया था और अपने साथ ही वह इन्हें ढाके में रखता था। वहाँ पर ही उन्होंने "वृन्द सतसई" लिखी।

"वृन्द सतसई" में सब नीति विषयक दोहे हैं। दोहों की भाषा बड़ी सरल है। बोल चाल में दृष्टान्त के रूप में ये बहुत बोले जाते हैं।

नीकी पै फोकी लगै, विन अवसर की बात।
जैसे बरनत युद्ध में, रस शृंगार न सुहात ॥१॥

फीकी पै नीकी लगै, कहिये समय विचारि।
सब को मन हर्षित करै, ज्यों विवाह में गारि ॥२॥

जाही ते कछु पाइये, करिये ताकी आस।
रीते सरवर पै गये, कैसे बुझत पियास ॥३॥

कैसे निबहै निबलजन, करि सबलन सों वैर।
जैसे बसि सागर विषे, करत मगर सों वैर ॥४॥

अपनी पहुंच विचारि कें, करतब करिये दौर।
तेते पांव पसारिये, जेती लाँबी सौर ॥५॥

पिसुन छल्यो नर सुजन सों, करत विसास न चूकि।
जैसे दाध्यो दूध को, पीवत छाँछहि फूकि ॥६॥

बनती देख बनाइये, परन न दीजै खोट।
जैसी चलै बयार तब, तैसी दीजै ओट ॥७॥

विधि रूठे तूठे कवन, को करि सके सहाय।
वन दव भय जलगत नलिन, तहँ हिम देत जराय॥८॥

करिये सुखको होत दुख, यह कहो कौन सयान।
वा सोने को जारिये, जासों फाटत कान॥९॥

अति परचै ते होत है, अरुचि अनादर भाय।
मलयागिरि की भीलनी, चन्दन देत जराय॥१०॥

फेर न ह्वै है कपट सों, जो कीजै व्यापार।
जैसे हाँडी काठ की, चढ़ै न दूजी बार॥११॥

मधुर वचन ते जात मिट, उत्तम जन अभिमान।
तनिक सीत जल सों मिटे, जैसे दूध उफान॥१२॥

सबै सहायक सबल के, कोऊ न निबल सहाय।
पवन जगावत आग को, दीपहिं देत बुझाय॥१३॥

लालच हूं ऐसो भलो, जासों पूरे आस।
चाटे हूं कहुं ओस के, मिटे काहु की प्यास॥१४॥

दुष्ट न छांड़े दुष्टता, कैसे हु सुख देत।
धोये हूं सौ बेर के, काजर होय न सेत॥१५॥

कहुं अवगुण सोइ होत गुण, कहुं गुण अवगुण होत।
कुच कठोर त्यों है भले, कोमल बुरे उदोत॥१६॥

कोउ बिन देखे बिन सुने, कैसे कहे विचार।
कूप भेख, जाने कहा, सागर को विस्तार ॥१७॥

जैसो बन्धन प्रेम को, तैसो बन्ध न और।
काठहिं भेदै, कमल को छेद न निकरै भौंर ॥१८॥

प्रकृति मिले मन मिलत है, अनमिलते न मिलाय।
दूध दही ते जमत है, काँजी ते फट जाय ॥१९॥

स्वारथ के सब ही सगे, बिन स्वारथ कोउ नाहिं।
जैसे पँछी सरस तरु, निरस भये उड़ जाहिं ॥२०॥

कुल बल जैसो होय सो, तैसी करिहैं बात।
बनिक-पुत्र जाने कहा, गढ़ लेबे की घात ॥२१॥

पर घर कबहुं न जाइये, गये घटत है ज्योति।
रवि-मण्डल में जात शशि, छीन कला छवि होति ॥२२॥

जे चेतन ते क्यों तजैं; जाको जासों मोह।
चुम्बक के पाछे लग्यो, फिरत अचेतन लोह ॥२३॥

जो पावै अति उच्च पद, ताको पतन निदान।
ज्यों तपि तपि मध्यान्ह लौं, अस्त होत है भान ॥२४॥

जिहि प्रसंग दूषन लगे, तजिये ताको साथ।
मदिरा मानत है जगत, दूध कलाली हाथ ॥२५॥

जाके संग दूषन दुरै, करिये तिहि पहिचानि।
जैसे समझै दूध सब, सुरा अहीरो पानि ॥२६॥

खल जन सों कहिये नहीं, गूढ़ कबहुँ करि मेल।
यों फैले जग माहिं ज्यों, जल पै बूंद कि तेल ॥२७॥

बिन स्वारथ कैसे सहै, कोऊ करुवे बैन।
लात खाय पुचकारिये, होय दुधारू धेन ॥२८॥

बहुतनि बल मिलि बल करै, करैं जु चाहैं सोय।
तिनकन की रसरी करी, करी निबंधन होय ॥२९॥

कष्ट परेहू महत जन, नेकु न होत मलान।
ज्यों ज्यों कंचन ताइये, त्यों त्यों निर्मल बान ॥३०॥

कन कन जोरे मन जुरै, खाते निबरै सोय।
बूंद बूंद ज्यों घट भरै, टपकत बीतै तोय ॥३१॥

दुख पाये बिनहू कहूं, सुख पावत है कोइ।
सहै बेध बंधन सुमन, तब गुन संयुत होइ ॥३२॥

दोषहिं को उमहे गहै, गुण न गहै खल लोक।
पियें रुधिर पय ना पियै, लगी पयोधर जोंक ॥३३॥

उद्यम कबहुं न छांड़िये, पर आशा के मोद।
गागर कैसे फोरिये, उनयो देखि पयोद ॥३४॥

कारज धीरे होतु है, काहे होत अधीर।
समय पाय तरुवर फलैं, केतक सींचौ नीर ॥३५॥

श्रम ही ते सब मिलत है, विन श्रम मिलै न काहिं।
सीधी अँगुरी घी जम्यो, क्यों हू निकरै नाहिं ॥३६॥

कहै रसीली वात जे, बिगरी लेत सुधारि।
सरस लौन की दाल में, ज्यों निंबू रस डारि ॥३७॥

बड़े सहज ही वात तें, रीझि देत वकसीस।
तुलसी दल ते विष्णु ज्यों, आक धतूरे ईस ॥३८॥

छोटे नर ते रहत है, शोभायुत सिरताज।
निर्मल राखै चाँदनी, जैसे पायंदाज ॥३९॥

सहज रसीलो होय सो, करै अहित पर हेत।
जैसे पीड़ित कीजिये, ऊख तऊ रस देत ॥४०॥

जामें विद्या नारदी, बिगरन देर न लाग।
पैस चौर, भुंसि स्वान को, कहत धनी सों जाग ॥४१॥

करै न कबहूं साहसी, दीन-हीन सा काज।
भूख सहै पर घास को, नहिं खावै मृगराज ॥४२॥

अपनी प्रभुता को सबै, वोलत झूठ बनाय।
वैश्या बरस घटावहीं, योगी बरस बढ़ाय ॥४३॥

कहूँ कहूँ गुन ते अधिक, उपजत दोष शरीर।
मीठो वाणी बोलि कै, परत पींजरा कीर ॥४४॥

मीठो कोऊ वस्तु नहिं, मीठी जाको चाह।
अमली मिसरी छांड़ि कै, आफू खात सराहि ॥४५॥

ऊपर दरसै सुमिल सी, अंतर अनमिल आंक।
कपटी जन की प्रीति है, खीरा की सी फांक ॥४६॥

द्वै ही गति हैं बड़ेन को, कुसुम मालती भाय।
केशव के सिर पर रहै, कै बन माहिं विलाय ॥४७॥

दान दीन को दीजिये, भिटे दरिद की पीर।
औषध ताको दीजिये, जाके रोग शरीर ॥४८॥

सब सों आगे होय के, कबहुं न करिये बात।
सुधरे काज समान फल, बिगरै गारी खात ॥४९॥

उत्तम विद्या लीजिये, जदपि नीच पै होय।
पर्यो अपावन ठौर महँ, कंचन तजत न कोय ॥५०॥

प्रीति छुटेहू सुजन के, मन ते हेत छूटै न।
कमल नाल को तोरिये, तदपि सूत टूटै न ॥५१॥

धन अरु गेंद जु खेल को, दोऊ एक सुभाय।
कर में आवत छिनक में, छिन में कर ते जाय ॥५२॥

क्षमा खड्ग लीने रहै, खल को कहा बसाय।
अगिन परी तृन रहतु थल, आपहि ते बुझि जाय।।५३।।

उदर भरन के कारने, प्रानी करत इलाज।
नांचे बांचै रन भिरै, रांचै काज अकाज।।५४।।

देत न प्रभु कछु बिन दिये, दिये देत यह बात।
लै तंदुल धन द्विजहिं सुनि, त्रिपत किये भखि पात।।५५।।

अगम पंथ है प्रेम को, जहँ ठकुराई नाहिं।
गोपिन के पीछे फिरे, त्रिभुवन पति बन माहिं।।५६।।

वचन रचन कापुरुष के, कहे न छिन ठहराय।
ज्यों कर पद मुख कछप के, निकसि निकसि दुर जाय।।५७।।

काहू को हँसिये नहीं, हँसी कलह को मूल।
हाँसि ही ते है भयो, कुल कौरव निरमूल।।५८।।

सुनिये सब ही की कही, करिये सहित विचार।
सर्व लोक राजी रहै, सो कीजै उपचार।।५९।।

मति फिर जाय बिपत्ति में, राव रंक इक रीत।
हेम-हरिण पाछे गये, राम गंवाई सीत।।६०।।

यदपि सहोदर होय तऊ, प्रकृति और की और।
विष मारे, ज्यावे सुधा, उपजे एकहि ठौर।।६१।।

सब ते लघु है मांगिवो, या में फेर न सार।
बलि पै याचत ही भये, वामन-तन करतार ॥६२॥

लोकन के अपवाद को, डर करिये दिन रैन।
रघुपति सीता परिहरि, सुनत रजक के बैन ॥६३॥

होत न कारज मो बिना, यह जु कहे सुअयान।
जहाँ न कुक्कट शब्द तहँ, होत न कहा बिहान ॥६४॥

उदिम बुद्धि वल सों मिलै, तब पावत सुखसाज।
अंध कंध चढ़ि पङ्ग ज्यों, सबै सुधारत काज ॥६५॥

अरि छोटो गनिये नहीं, जाते होत बिगार।
तृण समूह को छनिक में, जारत तनिक अंगार ॥६६॥

बुरो होय तउ सुकुल को, तासो बुरो न होय।
यदपि धुवां है अगर को, करत सुगन्धित सोय ॥६७॥

पंडित जन को श्रम मरम, जानत जे मतिधीर।
कवहूं बांझ न जानई, तन प्रसूत की पीर ॥६८॥

सब देखै पै आपनो, दोष न देखै कोइ।
करे उजेरो दीप पै, तरे अंधेरो होइ ॥६९॥

करत करत अभ्यास के, जड़मति होत सुजान।
रसरी आवत जात ते, शिल पर परत निशान ॥८०॥

सुख दिखाय दुख दीजिये, खल सो लरिये काहि ।
जो गुर दीने ही मरे, क्यों विष दीजै ताहि ।।७१।।

बुरी करें तेई बुरे, नाहिं बुरो कोउ और ।
बनिज करे सो बानियो, चोरी करै सो चोर ।।७२।।

कुल सुपूत जान्यो परत, लखि शुभ लच्छन गात ।
होनहार बिरवान के, होत चीकने पात ।।७३।।

बिना सिखाये लेत है, जिहिं कुल जैसी रीति ।
जनमत सिंहन को तनय, गज पर चढ़त अभीति ।।७४।।

चहल पहल अवसर परब, लोक रहत घर घेर ।
ते फिर दृष्टि न आवहीं, जैसे फसल बटेर ।।७५।।

अँतर अँगुरी चार को, साँच झूठ में होय ।
सब माने देखी, कही सुनी न मानै कोय ।।७६।।

होय भले को सुत बुरो, भलो बुरे को होय ।
दीपक के काजर प्रगट, कमल कीच ते जोय ।।७७।।

जो धनवन्त सु देय कछु, देय कहा धनहीन ।
कहा निचोरै नग्न जन, स्नान सरोवर कीन ।।७८।।

इंगित तैं आकार तैं, जान लेत जो भेंट ।
तासों बात दुरै नहीं, ज्यों दाई सों पेट ।।७९।।

कह्यो कछु करबो कछु, है जग की विधि दोय।
देखन के अरु खान के, और दुरद रद होय ॥८०॥

सरसुति के भंडार की, बड़ी अपूरब बात।
ज्यों खरचे त्यों त्यों बढ़े, बिन खरचे घटि जात ॥८१॥

वह संपति केहि काम की, जनि काहू पै होइ।
नित्य कमावै कष्ट करि, बिलसै औरहि कोइ ॥८२॥

निशि दिन खटकत तनक तृन, परै जु आंखिन माहिं।
तिन में सज्जन राखिये, सो छिन खटकत नाहिं ॥८३॥

कहा बड़े छोटे कहा, जहँ हित तहँ चित लागि।
हरि भोजन किय बिदुर घर, दुरजोधन को त्यागि ॥८४॥

गुनवारो संपति लहै, लहै न त्रिन गुन कोय।
काढ़े नीर पताल तें, जो गुनयुत घट होय ॥८५॥

जो जाको गुन जानहीं, सो तिहिं आदर देत।
कोकिल अंब ही लेत है, काग निबौरी लेत ॥८६॥

प्रान तृषातुर के रहें, थोरे हू जलदान।
पीछे जलभर सहस घट, डारे मिलत न प्रान ॥८७॥

विद्या धन उद्यम बिना, कहो जू पावै कौन।
विना डुलाये ना मिले, ज्यों पँखा की पौन ॥८८॥

अनमिलती जोई करत, ताही को उपहास।
जैसे योगी योग में, करत भोग की आस ॥८९॥

बुरे लगत सिख के वचन, हिये विचारो आप।
करुवे भेषज विन पिये, मिटै न तन को ताप ॥९०॥

विद्या गुरु की भक्ति सों, कै कीन्हे अभ्यास।
भील द्रोण के बिन कहे, सीख्यो बाण-विलास ॥९१॥

परधन लेत छिनाय इक, इक धन देत हसंत।
शिशिर करति पतझार तरु, गहरे करत वसंत ॥९२॥

तृनहुँ ते अरु तूल ते, हरवो याचक आहि।
जानतु है कछु मांगि है, पवन उड़ावत नाहिं ॥९३॥

कहा कहैं विधि की अविधि, भूलहुँ परै प्रबीन।
मूरख को संपति दई, पण्डित संपति-हीन ॥९४॥

गिरिधर कविराय

इनका जन्मकाल सं० १८७० कहा जाता है। भाषा से इन का जन्म स्थान कहीं अवध में जान पड़ता है। इनकी कुछ एक कुण्डलियां ही मिलती हैं जो या तो नीति विषयक हैं या अन्योक्तियां हैं, और बड़ी ही लोकप्रिय हैं।

इनके वारे में यह दन्त-कथा प्रसिद्ध है कि इन के पड़ोस में एक वढ़ई रहता था। उस के साथ इन का किसी कारण से झगड़ा हो गया; उस बढ़ई ने एक वार एक विचित्र पलंग वना कर राजा की भेंट किया। राजा ने जब उस पलंग को देखा तो वैसा ही एक और बनाने को कहा। बढ़ई ने गिरिधरराय से अपना बदला लेने के लिए उनके आंगन में लगे हुए वेर की लकड़ी राजा से माँगी। राजा ने उसे काटने की आज्ञा दे दी। गिरिधर ने राजा से वड़ी प्रार्थना की कि वह पेड़ न काटा जाय पर उसने एक न सुनी। इससे गिरिधरराय रुष्ट होकर उस राज्य को छोड़कर चल दिए और भ्रमण करने लगे। इसी भ्रमण में स्त्री-पुरुष ने मिलकर बहुत सी कुण्डलियों की रचना की। कहते हैं कि जिन कुण्डलियों के शुरू में साईं शब्द है वे इन की स्त्री की बनाई हुई हैं।

चिन्ता ज्वाल शरीर बन, दावा लगि लगि जाय।
प्रगट धुवां नहिं देखियत, उर अन्तर धुँधुवाय॥
उर अन्तर धुँधुवाय जरै ज्यों कांच की भट्टी।
जरिगो लोहू मांस रह गई हाड़ की ठट्टी॥
कह गिरिधर कविराय सुनो रे मेरे मिन्ता।
वे नर कैसे जियें जाहि तन व्यापै चिन्ता॥१॥

साईं वैर न कीजिये, गुरु पण्डित कवि यार।
बेटा वनिता पौरिया, यज्ञ-करावनहार॥
यज्ञ-करावनहार राजमन्त्री जो होई।
विप्र परोसी वैद आपको तपै रसोई॥
कह गिरिधर कविराय जुगन ते यह चलि आई।
इन तेरह सों तरह दिये बनि आवै साईं॥२॥

बैरी बंधुआ बानियां, ज्वारी चोर लबार।
व्यापारी रोगी ऋणी, नगर-नारि को यार॥
नगर-नारि को यार भूलि परतीत न कीजै।
सौ सौ सोहैं खांइ चित्त एको नहिं दीजै॥
कह गिरिधर कविराय घरै आवै अनगैरी।
हित की कहै बनाय जानिये पूरो बैरी॥३॥

बनिया अपने बाप को, ठगत न लावै बार।
निसि-वासर जननी ठगै, जहां लियौ अवतार।।
जहां लियौ अवतार मास दस उदरे राखै।
गुरु से करै विवाद आप पण्डित ह्वै भाखै।।
कह गिरिधर कविराय बेंचि हरदी औ धनियां।
मित्र जानि ठगि लेहि जहां लग पावै बनियां।।४।।

झूठा मीठे वचन कहि, ऋण उधार लै जाय।
लेत परम सुख ऊपजै, लै कै दियो न जाय।।
लै कै दियो न जाय ऊंच अरु नीच बतावै।
ऋण उधार कै रीति मांगतै मारन धावै।।
कह गिरिधर कविराय जानि रह मन में रूठा।
बहुत दिना ह्वै जाय कहै तो कागद झूठा।।५।।

सोना लेने पी गये, सूना करि गये देस।
सोना मिले न पी फिरे, रूपा ह्वैगे केस।।
रूपा ह्वैगे केस रोय रँग रूप गँवावा।
सेजन को विश्राम पिया बिन कबहुं न पावा।।
कह गिरिधर कविराय लोन बिन सबै अलोना।
बहुरि पिया घर आव कहा करिहौं लै सोना।।६।।

जाकी धन धरती हरी, ताहि न लीजै सङ्ग।
जो संग राखे ही बनै, तो करि डारु अपङ्ग॥
तो करि डारु अपङ्ग भूलि परतीति न कीजै।
कपट रूप बतराय तासु को मन हर लीजै॥
कह गिरिधर कविराय खुटक जैहै नहिं वाकी।
अरि समान परिहरिय हरी धन धरती जाकी॥७॥

दौलत पाइ न कीजिये, सपने में अभिमान।
चञ्चल जल दिन चारि को,ठाँउ न रहत निदान॥
ठाँउ न रहत निदान जियत जग में यश लीजै।
मीठे बचन सुनाय विनय सबही सों कीजै॥
कह गिरिधर कविराय अरे यह सब घर डोलत।
पाहुन निशि दिन चारि रहत सब ही के दौलत॥८॥

गुन के गाहक सहसनर, बिनु गुन लहै न कोय।
जैसे कागा कोकिला, शब्द सुनै सब कोय॥
शब्द सुनै सब कोय कोकिला सबै सुहावन।
दोऊ को इक रङ्ग काग सब भये अपावन॥
कह गिरिधर कविराय सुनो हो ठाकुर मन के।
बिनु गुन लहै न कोय सहस नर गाहक गुन के॥९॥

मित्र बिछोहा अति कठिन मति दीजै करतार।
वाके गुन जब चित चढ़ैं बरसत नयन अपार॥
बरसत नयन अपार मेघ सावन झरि लाई।
अब बिछुरे कब मिलैं कहो कैसी बनिआई॥
कह गिरिधर कविराय सुनो हो बिनती एहा।
हे करतार दयालु देहु जनि मित्र बिछोहा॥१०॥

साईं सब संसार में, मतलब को व्यवहार।
जब लगि पैसा गांठ में, तब लगि ताको यार॥
तब लगि ताको यार, यार सँग ही सँग डोलैं।
पैसा रहा न पास यार मुख से नहिं बोलैं॥
कह गिरिधर कविराय जगत यहि लेखा भाई।
करत बेगरजी प्रीति यार बिरला कोई साईं॥११॥

हीरा अपनी खानि को, मन ही मन पछिताय।
गुण कीमत जानै नहीं, तहां बिकानो आय॥
तहां बिकानो आय छेद करि कटि में बांध्यो।
बिन हरदी बिन लोन मास ज्यों फूहर रांध्यो॥
कह गिरिधर कविराय कहां लगि धरिये धीरा।
गुन कीमत घटि गई यहै कहि रोयो हीरा॥१२॥

रहिये लटपट काटि दिन, वरु घामें मां सोय।
छांह न वाकी बैठिये, जो तरु पतरो होय॥
जो तरु पतरो होय एक दिन धोखा दैहै।
जा दिन बहै बयारि टूटि तब जर से जैहै॥
कह गिरिधर कविराय छांह मोटे की गहिये।
पाता सब झरि जाय तऊ छाया में रहिये॥१३॥

चुगल न चूकै कबहुं को, अरु चूकै सब कोइ।
गोलंदाज कमानिया चूक उनहुँ से होइ॥
चूक उनहुँ से होइ जे बांधे बरछी गुल्ला।
चूक उनहुँ से होइ पढ़ैं जे पण्डित मुल्ला॥
कह गिरिधर कविराय कलाहू ते नट चूकै।
चुगल चौकसीदार ससुर कबहूँ नहिं चूकै॥१४॥

नयनन की नोकैं खरी, निकस जात जस तीर।
हेरे घाव न पाइये, बेधैं सकल शरीर॥
बेधैं सकल शरीर बैद का करै बैदाई।
करिहै कोटि उपाय घाव नहिं देत दिखाई॥
कह गिरिधर कविराय विरहिनी रहिहो चौकैं।
समुझि बूझि कै चलो बुरी नयनन की नोकैं॥१५॥

साईं घोड़न के अछत, गदहन पायो राज।
कौआ लीजै हाथ में, दूरि कीजिये बाज।
दूरि कीजिये बाज राज पुनि ऐसो आयो।
सिंह कीजिये कैद स्यार गजराज चढ़ायो॥
कह गिरिधर कविराय जहां यह बूझि बड़ाई।
तहां न कीजै भोर सांझ उठि चलिए साईं॥१६॥

साईं अवसर के पड़े, को न सहै दुख द्वन्द।
जाय बिकाने डोम घर, वै राजा हरिचन्द॥
वै राजा हरिचन्द करैं मरघट रखवारी।
धरे तपस्वी वेष फिरे अर्जुन बलधारी॥
कह गिरिधर कविराय रसोई भीम बनाई।
को न करै घटि काम परे अवसर के साईं॥१७॥

लाठी में गुण बहुत हैं, सदा राखिये संग।
गहरो नद नारो जहां, तहां बचावै अंग॥
तहां बचावै अंग झपटि कुत्ता कहँ मारै।
दुसमन दावागीर, तिनहुँ को मस्तक झारै॥
कह गिरिधर कविराय सुनो हो धूर के बाठी।
सब हथियारन छांड़ि हाथ महँ लीजै लाठी॥१८॥

कमरी थोरे दाम की, आवै बहुतै काम।
खासा मलमल बाफता, उन कर राखै मान॥
उन कर राखै मान बुन्द जहाँ आड़े आवै।
बकुचा बांधे मोट रात को झारि बिछावै॥
कह गिरिधर कविराय मिलत है थोरे दमरी।
सब दिन राखै साथ बड़ी मर्यादा कमरी॥१९॥

बिना विचारे जो करै, सो पाछे पछिताय।
काम बिगारे आपनो, जग में होत हँसाय॥
जग में होत हँसाय चित्त में चैन न पावै।
खान पान सन्मान राग रँग मनहिं न भावै॥
कह गिरिधर कविराय दुःख कुछ टरत न टारे।
खटकत है चित माहिं कियो जो बिना बिचारे॥२०॥

बीती ताहि बिसारि दै, आगे की सुधि लेइ।
जो बनि आवै सहज में, ताही में चित देइ॥
ताही में चित देइ बात जोई बनि आवै।
दुर्जन हँसै न कोइ चित्त में खेद न पावै॥
कह गिरिधर कविराय यहै करु मन परतीती।
आगे की सुधि लेइ समुझि बीती सो बीती॥२१॥

साईं अपने चित्त की, भूलि न कहिये कोइ ।
तब लग मन में राखिये, जब लग कारज होइ ॥
जब लग कारज होइ भूलि कबहूं नहिं कहिये ।
दुर्जन तातो होय आप सियरे ह्वै रहिये ॥
कह गिरिधर कविराय बात चतुरन को नाईं ।
करतूती कहि देत आप कहिये नहिं साईं ॥२२॥

क्यारी करै कपूर की, मृगमद बरहा बन्ध ।
सींचे इतर गुलाब से, लहसुन तजै न गन्ध ॥
लहसुन तजै न गन्ध रहे जो अगर संयूता ।
कबहुँ अहे गजराज कहूँ सूकर के पूता ॥
कह गिरिधर कविराय, वेद भाषै यह सारी ।
बीज बयो सो होय करै क्या उत्तम क्यारी ॥२३॥

साईं बेटा बाप के, बिगरे भयो अकाज ।
हरिनाकस्यप कंस को, गयउ दुहुन को राज ॥
गयउ दुहुन को राज बाप बेटा में बिगरी ।
दुस्मन दावागीर, हँसै महि मण्डल नगरी ॥
कह गिरिधर कविराय युगन याही चलि आई ।
पिता पुत्र के बैर, नफ़ा कहु कौने पाई ॥२४॥

राजा के दरबार में, जैये समया पाय।
साईं तहां न बैठिये, जहँ कोउ देय उठाय॥
जहँ कोउ देय उठाय, बोल अनबोले रहिये।
हँसिये नहीं हहाय, बात पूछे ते कहिये॥
कह गिरिधर कविराय, समय सों कीजै काजा।
अति आतुर नहिं होय, बहुरि अनखैहैं राजा॥२५॥

कृतघन कबहुँ न मानहीं, कोटि करै जो कोय।
सर्वस आगे राखिये, तऊ न अपनो होय॥
तऊ न अपनो होय, भले की भली न मानै।
काम काढ़ि चुप रहै, फेरि तिहि नहिं पहिचानै॥
कह गिरिधर कविराय, रहत नितही निर्भय मन।
मित्र शत्रु सब एक, दाम के लालच कृतघन॥२६॥

साईं अपने भ्रात को, कबहुं न दीजै त्रास।
पलक दूर नहिं कीजिये, सदा राखिये पास॥
सदा राखिये पास, त्रास कबहूँ नहिं दीजै।
त्रासि दियो लंकेश, ताहि की गति सुन लीजै॥
कह गिरिधर कविराय, राम से मिलियो जाई।
पाय विभीषण राज, लंकपति बाज्यो साईं॥२७॥

बाबा दीनदयाल गिरि

इनके जन्मकाल और जन्मस्थान का कुछ पता नहीं। इनके ग्रन्थों से यह पता लगता है कि ये काशी के पश्चिम द्वार में विनायकदेव के पास रहते थे। इन के बनाये हुए छः ग्रंथ कहे जाते हैं। इन में से "अनुराग बाग" और "अन्योक्ति कल्पद्रुम" "दृष्टांत तरंगिणी" "अन्योक्तिमाला" और "वैराग्य दिनेश" आजकल मिलते हैं, जिनका एक उत्तम संस्करण काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने "दीनदयाल ग्रन्थावली" नाम से प्रकाशित किया है। छठे ग्रंथ "बागबहार" का कुछ पता नहीं चलता; केवल "शिवसिंह सरोज" में ही इस ग्रन्थ का उल्लेख मिलता है। कइयों की सम्मति में "अनुराग-बाग" का ही दूसरा नाम "बाग बहार है।"

"अनुराग बाग" में श्रीकृष्णचन्दजी की जीवन-चरित्र वर्णित है। शेष अन्य ग्रन्थों में अन्योक्तियों तथा दृष्टान्तों द्वारा नीति तथा ज्ञान का उपदेश दिया गया है।

कहा जाता है कि ये बड़े वृद्ध होकर मरे। पंडित विजयानन्द त्रिपाठी ने इन का मृत्युकाल सं० १९२२ बतलाया है।

हे जल वेग-तरंग तें करै विलग मति मीन ।
ये तो तेरे विरह तें ह्वै हैं प्रान-विहीन ॥
ह्वै हैं प्रान विहीन देखि दसरथ को बानो ।
प्रिय को देख्यो नाहिं प्रान को कियो पयानो ॥
वरनै दीनदयाल नहीं जिन प्रेम किये पल ।
ते किमि जानै पीर वियोगीजन की हे जल ॥१॥

पूरे जदपि पियूख तें, हरसेखर आसीन ।
तदपि पराये बस परे, रहो सुधाकर छीन ॥
रहो सुधाकर छीन कहा है जो जग वंदत ।
केवल जगत बखान पाय न सुजान अनंदत ॥
वरनै दीनदयाल चन्द हो हीन अधूरे ।
जौ लगि नहिं स्वाधीन कहा अमृत तें पूरे ॥२॥

बरखै कहा पयोद इत मानि मोद मन माहिं ।
यह तो ऊसर भूमिहै, अंकुर जमिहै नाहिं ॥
अंकुर जमिहै नाहिं वरष सत जो जल दैहै ।
गरजै तरजै कहा वृथा तेरो श्रम जैहै ।
वरनै दीनदयाल न ठौर कुठौरहि परखै ।
नाहक गाहक विना बलाहक ह्यां तू बरखै ॥३॥

रतनाकर महि माँह तुम, अति अथाह गम्भीर।
हैं प्रवाह दुस्तर भरे, ग्राह प्रबल तो नीर ॥
ग्राह प्रबल तो नीर तीर बैठत बुध हारे।
धीर न रहै सरीर तरंग निहारि तिहारे ॥
बरनै दीनदयाल जौन मरजीवा जाकर।
लै मुकुतन को कढ़ै सोइ धनि है रतनाकर ॥४॥

हे नद ! ढाहै तरुन जनि, पावस प्रभुता पाय।
ये तो तेरे तीर पै, सोभा रहे बनाय ॥
सोभा रहे बनाय छाय फल फूलन तें अति।
सीत सुगन्ध समीर धीर गति हरैं पथिक मति ॥
बरनै दीनदयाल बिबिध खग रटैं भरे मद।
ये सुख रहिहैं नाहिं गये इन तरु के है नद ॥५॥

ह्वारो है हे कँज ! फँसि, चंचरीक तुव माँहि।
याको नीके राखिये, दुखित कीजिये नाहिं ॥
दुखित कीजिये नाहिं दीजिये रस धरि आगे।
एक रावरे हेत सबै इन सौरभ त्यागे ॥
बरनै दीनदयाल प्रेम को पैंड़ो न्यारो ॥
बारिज बँध्यो मलिन्द दारु को बेधनिहारो ॥६॥

भौंरा ! अंत बसंत के, है गुलाब इहि रागि ।
फिरि मिलाप अति कठिन है, या बन लगे दवागि ॥
या बन लगे दवागि नहीं यह फूल लहैगो ।
ठौरहि ठौर भ्रमात बड़ो दुख तात सहैगो ॥
बरनै दीनदयाल किते दिन फिरि है दौरा ।
पछतैहै कर दए गए रितु पीछे भौंरा ॥७॥

चाली हंसन की चलै, चरन चोंच करि लाल ।
लखि परिहैं बक ! तव कला, झख मारत ततकाल ॥
झख मारत ततकाल ध्यान मुनिबर सो धारत ।
बिहरत पंख फुलाय नहीं खज अखज विचारत ॥
बरनै दीनदयाल बैठि हंसन की आली ।
मंद मंद पग देत अहो यह छल की चाली ॥८॥

लोहा ! द्रोह न कीजिये, पारस मनि के साथ ।
ताहि परसि पैहै प्रभा, भूप-मनिन के माथ ॥
भूप-मनिन के माथ तोहि लखि जग हरखैगो ।
फरि करि कोटि प्रनाम सुमन तो पै बरखैगो ॥
बरनै दीनदयाल कौन सतसंग न सोहा ।
पैहै रूप अनूप बढ़ैगी कीमति लोहा ॥९॥

एहो द्रुम या सिसिर को दीजे दान तुरंत ।
दीने सूखे पात के, दैहै हरो बसंत ॥
दैहै हरो बसंत फूल फल दलन समेते ।
पैहो पुंज सुगन्ध भृंग गूंजेंगे केते ॥
बरनै दीनदयाल लसोगे सोभा से हो ।
भाखत वेद पुरान दिये बिन मिले न एहो ॥१०॥

वा दिन की सुधि तोहि को, भूलि गई कित साखि ।
बागवान गहि घूरतें, ल्यायो गोदी राखि ॥
ल्यायो गोदी राखि सींचि पाल्यो निज कर तें ।
भूलि रह्यो अब फूलि पाय आदर मधुकर तें ॥
बरनै दीनदयाल बड़ाई है सब तिनकी ।
तू झूमै फल भार भूलि सुधि को वा दिन की ॥११॥

रंभा ! झूमत हौ कहा थोरे ही दिन हेत ।
तुम से केते ह्वै गये, अरु ह्वै हैं इहि खेत ॥
अरु ह्वैहैं इहि खेत मूल लघु साखाहीने ।
ताहू पै गज गहै दीठि तुम पै प्रति दीने ॥
बरनै दीनदयाल हमें लखि होत अचंभा ।
एक जन्म के लागि कहा झुकि झूमत रंभा ॥ १२॥

दिन द्वै पाय बसंत-मद, फूल्यो कहा पलास ।
ग्रीषम भीषम सीस पै, नहिं लाली की आस ॥
नहिं लाली की आस फूल सब तेरे झरि हैं ।
पीछे तोहि न दली अली कोउ आदर करि हैं ॥
बरनै दीनदयाल रहो नय कोमल किन ह्वै ।
ये नख नाहर रूप रहैंगे तेरे दिन द्वै ॥१३॥

धार्यो दल न करीर तुम, बहु रितुराजन पाय ।
यहै त्याग दृढ़ देखिकै, प्रिय कीनो जदुराय ॥
प्रिय कीनों जदुराय रमै तव कुंजनि माहीं ।
और सबै तरुराज ताहि दिसि देखत नाहीं ॥
बरनै दीनदयाल ऊंच नहिं नीच विचार्यो ।
जो जग धर्यो विराग ताहि हरि हित सों धार्यो ॥१४॥

एकै ऐगुन देखि कै, नीव न तजो सुजान ।
याकी कटुता नहिं गुनो, करि बहुगुन पहिचान ॥
करि बहुगुन पहिचान प्रथम सब रोग बिनासै ।
जो कोउ सेवै याहि ताहि पीछे सुख भासै ॥
बरनै दीनदयाल छाँह मुद देति अनेकै ।
यह सीतलता खानि तजो कटु देखि न एकै ॥१५॥

माली को सहि सासना, सुनि गेंदे मति भूल ।
बिन सिर दै पैहै नहीं, वहै हजारे फूल ॥
वहै हजारे फूल जौन सुरसीस चढ़ैगो ।
दए आपनो आप अधिक तें अधिक बढ़ैगो ॥
बरनै दीनदयाल किती तू पैहै लाली ।
तेरे ही हित हेत देत सिख तोकों माली ॥१६॥

हे पिक पंचम नाद को, नहिं भीलन को ज्ञान ।
यहै रीझिबो मानि तू, जो न हनै हिय बान ॥
जो न हनै हिय बान बड़ी करुना इन केरी ।
मारें ये मृगजूथ कहा गिनती है तेरी ॥
बरनै दीनदयाल थको रटि के तुम केतिक ।
ये नहिं रीझनिहार जाहु बन को तजि हे पिक ॥१७॥

गुंजन को बन देखि कै, मुकुतन दीनि त्यागि ।
अरी अबूझ किरातिनी, धिक धिक तेरी लागि ॥
धिक धिक तेरी लागि न ऐगुन गुन पहिचानै ।
ऊपर ही के रंग ठगी मतिमूढ़ न जानै ॥
बरनै दीनदयाल परी यह तो सब कुंजन ।
कौड़ी याको मोल लाल लखि भूल न गुंजन ॥१८॥

वै तो मानत तोहि नहिं, तैं कित भयो उमंग।
नहिं दीपहि कुछ दरद क्यों जरि जरि मरै पतंग॥
जरि जरि मरै पतंग तासु ढिग कदर न तेरी।
तू अपनो हित जानि भाँवरै भरत घनेरी॥
बरनै दीनदयाल प्रानप्रिय मान्यो तैं तो।
मुखमलीन करि रहैं चहैं। नहिं तोको वै तो॥१९॥

टूटे नख रद केहरि, वह बल गयो थकाय।
हाय जरा अब आइकै, यह दुख दियो बढ़ाय॥
यह दुख दियो बढ़ाय चहूं दिसि जम्बुक गाजैं।
ससक लोमरी आदि स्वतन्त्र करैं सब राजैं॥
बरनै दीनदयाल हरिन बिहरैं सुख लूटे।
पंगु भयो मृगराज आज नखरद के टूटे॥२०॥

एरे मेरे धोबिया, तोसों भाखत टेरी।
ऐसी धोनी धोइ जो, मैलो होय न फेरि॥
मैलो होय न फेरि चीर इहि तीर न आवै।
साबुन लाउ विचारि मैल जातें छुट जावै॥
बरनै दीनदयाल रंग चढ़ि है चहुं फेरे।
जो तू दैहै धोय भले जल उज्ज्वल एरे॥२१॥

वियोगी हरि

हरि जी का जन्म छत्रपुर राज्य (बुंदेलखंड) में चैत्र शुक्ल रामनवमी सं० १९५३ में हुआ। इन का पहला नाम हरिप्रसाद द्विवेदी था। ये आजन्म अविवाहित रहने का निश्चय कर चुके हैं।

हरिजी उत्कृष्ट लेखक और भावुक कवि हैं। कविता अधिकतर व्रजभाषा में करते हैं। तीन-चार वर्ष तक ये सम्मेलन पत्रिका का सम्पादन करते रहे हैं। संक्षिप्त सूरसागर, ब्रजमाधुरी-सार, छत्रसालग्रन्थावली, विहारी संग्रह, सूर पदावली, हिन्दी पद्य रत्नावली साहित्य रत्न मंजूषा, आदि कितनी ही पुस्तकों का इन्हों ने सम्पादन किया है। इन के अतिरिक्त इनकी छद्म योगिनी नाटिका, साहित्य विहार, कवि कीर्तन, अनुराग वाटिका, अन्तर्नाद, वीर सतसई आदि कई अन्य पुस्तकें भी प्रकाशित हुई हैं।

अन्तर्नाद गद्य काव्य है। इस के लेख बड़े भाव पूर्ण हैं। वीर सतसई वीर रस का उत्कृष्ट काव्य ग्रन्थ है। इस पर इस वर्ष हिन्दी साहित्य सम्मेलन की ओर से १२००) का मंगलाप्रसाद पारितोषक मिला है।

खंड खंड ह्वै जाय बरु, देतु न पाछें पेंड़ ।
लरत सूरमा खेत की, मरत न छाँडतु मेंड़ ॥ १ ॥

मुँहमाँगे रण-सूरमा, देतु दान परहेतु ।
सीसदान हूँ देतु, पै पीठि-दान नहिं देतु ॥ २ ॥

कूकरु उदरु खलाय कैं, घर-घर चाटतु चून ।
रँगे रहत सद खून सों, नित नाहर-नाखून ॥ ३ ॥

मति मन-मानिक सौंपियौ, कुटिल-कादरनु हाथ ।
हैं वे ही सतजौहरी, नहिं जिन धर पै माथ ॥ ४ ॥

कादर बोरनु संग मिलि भलें अलापहिं राग ।
छिपत न अंत बसंत में, कैसेहुँ कोयल काग ॥ ५ ॥

औघट घाट कृपाण कौ, समर धार बिनु पार ।
सनमुख जे उतरे, तरे, परे बिमुख मँझधार ॥ ६ ॥

धनि धनि, सो सुकृती व्रती, सूर-सूर सतसंध ।
खड्ग खोलि खुलि खेत पै, खेलतु जासु कवंध ॥ ७ ॥

लरतु काल सों लाख में, कोइ माइ कौ लाल ।
कहु, केते करबाल कों, करत कँठ कलमाल ॥ ८ ॥

सीस हथेरी पर धरें, ठोंकत भुज मजबूत ।
छिति, छत्रानी-गर्भ तें, जनमतु सूर सपूत ॥ ९ ॥

कादर भये न सूर-सुत, करि देख्यौ निरधार ।
नहिं सिंहनी के गर्भ तें, उपजे कबहुँ सियार ॥१०॥

'छत्रिय छत्रिय' कहे तें, छत्रिय होय न कोय ।
सीसु चढ़ावै खड्ग पै, छत्रिय सोई होय ॥११॥

जोरि नाम सँग 'सिंह' पदु, कियो सिंह बदनाम ।
ह्वै हैं क्यों करि सिंह यौं, करि शृगाल के काम ॥१२॥

अरे फिरत कत, बावरे ! भटकत तीरथ भूरि ।
अजौं न धारत सीस पै, सहज सूर-पग-धूरि ॥१३॥

कै कृपाण की धार, कै अनल कुण्ड को ठाट ।
एही बीर-बधून के, द्वै अन्हान के घाट ॥१४॥

कोटिनु मधि कोऊ कहूँ, कल दीपक इक होतु ।
नेह-सहित निज सीसु दै, दस दिसि करतु उदोतु ॥१५॥

दियो दानु जिन सीसको, बहुत न ते व्रत-बीर ।
मुहुँ लगाय केते, कहौ, पियत सिंहनी-छीर ? ॥१६॥

लै बल-विक्रम-बीन, कवि ! किन छेड़त वह तान।
उठैं डोलि जेहिं सुनतही; धरा, मेरु, ससि, भान ॥१७॥

कमल-केलि करिनीन सँग, करत कहा करि राज !
गिरितें गाजत गाज-लौं, रह्यो उतरि मृगराज ॥१८॥

होति लाख में एक कहुँ, अनल-बर्न वह आँख।
देखत ही दहि करति जो, दुवन-दीह-दलु राख ॥१९॥

मिलतु न पत्रा में सुदिनु, भिरत न कादर मंद।
नहिं सोधत रण बाँकुरे, नखत, वार, तिथि, चंद ॥२०॥

मिलियौ तहँ परखति, प्रिये ! मिलिहौं सरबसु वारि।
विसिख-हारु हौं पौन्ह, तुम ज्वाल-माल उर धारि ॥२१॥

प्रकृत बीर कौ अंतहूँ, परतु मंद नहिं तेज।
नहिं चाहतु चंदन-चिता, भीष्म छाँड़ि सर-सेज ॥२२॥

औसर आवत प्राण पै, खेलि जाय गहि टेक।
लाखनु बीच सराहिये, प्रकृत बीर सो एक ॥२३॥

सुमृदु सिरीष-प्रसून तें, कठिन बज्र तें होय।
प्रकृत-बीर-बर-हीय कौ, चित्र न खींच्यौ कोय ॥२४॥

पर-भाषा, पर-भाव, पर-भूषण, पर-परिधान।
पराधीन जन की अहै, यह पूरी पहिंचान ॥२५॥

दंभ दिखावत धर्म कौ, यह अधीन मति-अंध ।
पराधीन अरु धर्म कौ, कहौ कहा संबंध ? ॥२६॥

वह चित्तौर की पद्मिनी, किमि पैहौ सुलतान ।
कब सिंहिनि-अधरान कौ,कियौ स्वान मधु-पान ?॥२७॥

चंचरीक ! चित्तौर में, नहिं पैहैं रस-जाल ।
ह्वैहैं चंपक-माल-लौं, तोहि पद्मिनी बाल ॥२८॥

ओ, प्रताप मेवाड़-पति ! यह कैसो तुव काम ।
खात खलनु तुव खड्ग, पै होत काल कौ नाम ॥२९॥

सुभट-नयन अंगारु, पै अचरजु एकु लखातु ।
ज्यौं-ज्यौं परतु उमाह-जलु, त्यों-त्यों धँधकत जातु ॥३०॥

जाव फूटि रति-रँग-रली, अलसौहीं वह आँख ।
सहज ओज-ज्वाला-ज्वलित, चिरजीवौ जुग लाख ॥३१॥

सुरत-रंग कहँ दृगनि में, कहँ रण-ओज-उदोतु ।
यातें उज्ज्वल होत मुखु, वातें कज्जल होतु ॥३२॥

जदपि इतौ पानिप चढ़्यौ, अचरजु तदपि महान ।
नित प्रति प्यासी ही रही, लही न तृप्ति कृपान ॥३३॥

वसति आप लघु म्यान में, वह कृपान लघु गात ।
त्रिभुवन में न समातु पै, सुजसु तासु अवदात ॥३४॥

इत सर सारँग पै चढ़तु, चढ़ि रागतु रण-रागु।
उत अरि-अँगना-अङ्ग ते, उतरतु सहज सुहागु ॥३५॥

सब तौ साँचे में ढरे, ढरे न ए द्वै ढार।
प्रेम-मेंड़-रखवार, औ सीसु चढ़ावनहार ॥३६॥

मथि-मथि अच्छर-निधि मरे, कढ्यो न कछुवै सार।
इक प्रेमी, इक सूरमा, भये उतरि भव-पार ॥३७॥

कह्यौ माय, मुख चूमि कै, कर गहाय करवाल।
"जनि लजाइयौ दूध मो पयोधरनु कौ लाल" ॥३८॥

चूर चूर ह्वै अंत लौं, रखियौ कुल की लाज।
जननि-दूध-पितु-खड्ग की, अहै परिच्छा आज ॥३९॥

गरब करत कत बावरे, उमंगि उच्च गिरि-शृङ्ग।
जस-गौरव सिवराज कौ, इत नभते हुँ उतङ्ग ॥४०॥

तेग बहादुर जो किया, किया कौन मुरशीद ?
सर दीना, सार न दिया, साँचा अमर शहीद ॥४१॥

असि-व्रत धार्‌यौ धर्म पै, उमँगि उधार्‌यौ हिन्द।
किये सिक्ख तें सिंह सब, धनि धनि गुरुगोविन्द ॥४२॥

"माथ रहौ वा ना रहौ, तजैं न सत्य अकाल"।
कहत-कहत ही चुनि गये, धनि गुरु गोविंद लाल ॥४३॥

तजिहैं मरद न मेंड निज, रहैं बकत बदराह।
करत न कूकर-वृन्द की, कछु गयंद परवाह ॥४४॥

सूर न चूकत दाँव निज, कूर बजावत गाल।
दीनों चक्र चलाय हरि, रह्यौ बकत सिसुपाल ॥४५॥

नहिं यामें अचरज कछू, नाहिंन नीति-अनीति।
हँसत सदा खल सुजन पै, नई न कछु यह रीति ॥४६॥

बस, काढ़ौ मति म्यान तें, यह तीछन तरवार।
जानत नहिं ठाढ़े यहां रसिक छैल सुकुमार ॥४७॥

कवच कहा ए धारिहैं, लचकीले मृदु गात।
सुमनहार के भार जे, तीन-तीन बल खात ॥४८॥

कै चढ़िलै असि-धार पै, कै बनिलै सुकुमार।
द्वै तुरंग पै एक सँग, भयौ कौन असवार? ॥४९॥

कहा भयौ इक दुर्ग जो, ढायौ रिपु रणधीर।
तुम तौ मानिनि-मान-गढ़, नित ढाहत रति बीर! ॥५०॥

ऐहैं, कहु, केहि काम ए, कादर काम-अधीर।
तिय-मृग-ईछनहीं जिन्हें, है अति तीछन तीर ॥५१॥

छिन मुख देखत आरसी, छिन साजत सिंगार।
कहा कटैहैं सीस ए, बने-ठने सरदार ॥५२॥

सुमन-सेज सग बाल तुम, पौंढ़े करि सिंगार।
को भीषम-सर-सेज की, अब पत राखनहार ॥५३॥

तिय-कटि-कृसता कौ कबिनु, नित बखानु नवकीन।
वह तौ छीन भई नहीं, पै इन की मति छीन ॥५४॥

फरति न हिम्मत खेत में, बहति न असि-व्रत धार।
बल-बिक्रम की बोरियाँ, बिकति न हाट बजार ॥५५॥

कहा तुम्हैं तरवार सों, है सब सूखी शान।
मूठ सुनहरी चाहिए, और मखमली म्यान ॥५६॥

जित पायनु तें जान्हवी, भई प्रगटि जग-पूत।
तिनही ते प्रगटे न ए, तुम्हरे अनुज अछूत ॥५७॥

अहे ! गरब कत करत तूं, खरब पाइ अधिकार।
रहे न जग दसकंध-से, दिग-विजयी जुग चार ॥५८॥

बिना मान तज दीजियौ, स्वर्गहुँ सुकृत-समेत।
रहौ मान तौ कीजियौ, नरकहुं नित्य निकेत ॥५९॥

अंतहुँ अरिहि न सौंपियौ, करियौ प्रन-प्रतिपाल।
निज भावरि की भामिनी, निज कर की करवाल ॥६०॥

भीरु छिपावतु जीव ज्यौं, कृपनु छिपावतु दामु।
सूर छिपावतु शक्ति त्यौं, चतुर छिपावतु नामु ॥६१॥

फुटकर

ज्ञानवान हठ करै, निधन परिवार बढ़ावै।
बँधुआ करै गुमान, धनी सेवक ह्वै धावै॥
पण्डित किरिया हीन, राँड दुरबुद्धि प्रमाने।
धनी न समझै धर्म, नारि मरजाद न माने॥
कुलवंत पुरुष कुलविधि तजै बंधु न मानै बंधु हित॥
सन्यास धारि धन संग्रहै, ये जगमें मूरख विदित॥१॥

सर सर हंस न होत, बाजि गजराज न दर दर।
तर तर सुफर न होत, नारि पतिव्रता न घर घर॥
मन मन सुमति न होत, मलैगिरि होत न वन वन।
फन फन मनि नहिं होत, मुक्तजल होत न घन घन॥
रन रन सूर न होत हैं, जन जन होत न भक्ति हरि।
नर सुनो सकल "नरहरि" कहत, सब नर होत न एकसरि

गई भूमि फिर मिले, वेलि फिर जमे जरे तें।
फल फूलन ते फले, फूल फूलन्त झरे तें॥
"केशव" विद्या निकट विकट विसरी फिर आवै।
बहुरि होय धन धर्म गई सम्पति फिर पावै॥
होइ जो सील सुसील मति जगत हेतु इमि गाइये।
प्रान गयो फिर मिलत, पै पत न गई फिर पाइये॥

जीभि जोग अरु भोग जीभि बहु रोग बढ़ावै।
जीभि करै उद्योग जीभि लै कैद करावै ॥
जीभि स्वर्ग लै जाय जीभि सब नरक दिखावै।
जीभि मिलावै राम जीभि सब देह धरावै ॥
निज जीभि ओठ एकत्र करि बाँट सहारे तोलिये।
'बैताल' कहै 'विक्रम' सुनो जीभि सँभारे बोलिये ॥४॥

टका करै कुलहूल टका मिरदङ्ग बजावै।
टका चढ़ै सुखपाल टका सिर छत्र धरावै।
टका माय अरु बाप टका भैयन को भया।
टका सास अरु ससुर टका सिर लाड़ लड़ैया ॥
अब एक टके बिनु टकटका रहत लगाये रातदिन।
'बैताल' कहे 'विक्रम' सुनो धिक जीवन एक टके बिन ॥५॥

ससि बिन सूनी रैन ज्ञान बिन हिरदै सूनो।
कुल सूनो बिनु पुत्र पत्र बिन तरुवर सूनो ॥
गज सूनो इक दंत ललित बिन सायर सूनो।
विप्र सून बिन वेद और बिन पुहुप बिहूनो ॥
हरि नाम भजन बिन संत अरु घटा सून बिन दामिनी।
'बैताल' कहे 'विक्रम' सुनो पतिबिन सूनी कामिनी ॥६॥

गेह तज्यो पुनि नेह तज्यो पुनि खेह लगाइ के देह सँवारी ।
मेघ सहै सिर सीत सहै तन धूप समै जु पँचागिनि बारी ॥
भूख सहै रहि रूख तरे पर 'सुन्दरदास' समै दुखभारी ।
डासन छांड़िकै कासनऊपर आसन मारि पै आस न मारी ॥

धूरि चढ़ै नभ पौन प्रसंग तें कीच भई जल संगति पाई ।
फूल मिलै नृप पै पहुँचै कृमि कीटनि संग अनेक बिथाई ॥
चन्दन संग कुदारु सुगन्ध ह्वै नीच प्रसंग लहै करुआई ।
दासजू देख्यो सही सब ठौरनि संगतिको गुनदोष न जाई।८

पंडित पंडित सों सुख मंडित सायर सायर के मन मानै ।
संतहि संत भनंत भलौ, गुनवंतनि को गुनवंत बखानै ॥
जापँह जा सह हेतु नहीं कहिये सुकहा तिहिकी गति जानै ।
सूरको सूर, सतीको सती, अरु 'दास' जतीको जती पहचानै।९

अति खीन मृनाल के तारहु ते तेहि ऊपर पाँव दै आवनोहै ।
सुईवेह ते द्वार सकी न तहाँ परतोति को टाँड़ो लदावनोहै ॥
कवि 'बोधा' अनी घनी नेजहु ते चढ़ितापै न चित्त डरावनोहै
यह प्रेमको पन्थ कराल महा तरवारिकी धारपै धावनोहै १०

फलहीन महीरुह त्यागि पखेरु वनानलतें मृग दूरि पराहीं ।
रसहीन प्रसूनहि त्यागकरैं अलि शुष्कसरोबर हंस न जाहीं॥

पुरुषै निरद्रव्य तजै गनिका न अमात्य रहैं बिगरे नृप पाहीं
शिवसम्पति रीति यही जगकी बिनस्वारथ प्रीतिकरै कोउनाहीं

हिलि मिलि जानै तासों मिलि कै जनावै हेत,
हित को न जानै ताको हितू न त्रिसाहिये।
होय मगरूर तापै दूनी मगरूरी कीजै,
लघु ह्वै चलै जो तासों लघुता निबाहिये॥
'बोधा' कवि नीति को निबेरो यही भाँति अहै,
आप को सराहै ताहि आपहू सराहिये।
दाता कहा सूर कहा सुन्दर सुजान कहा,
आप को न चाहै ताके बाप को न चाहिये ॥१२॥

सुनो हो विटप हम पुहुप तिहारे अहैं,
राखिहो हमें तो शोभा रावरी बढ़ावैंगे।
तजिहो हरषि कै तो बिलग न मानैं कछू,
जहाँ जहाँ जैहैं तहाँ दूनो यश गावैंगे॥
सुरन चढ़ैंगे नर सिरनि चढ़ैंगे नित,
सुकवि 'अनीस' हाथ हाथन बिकावैंगे।
देश में रहैंगे, परदेश में रहैंगे, काहू
भेस में रहैंगे तऊ रावरे कहावैंगे॥ १३॥

हाथी के दाँत के खिलौना बनैं भाँति भाँति,
बाघन की खाल तपी शिव मन भाई है।
मृगन की खालन को ओढ़त हैं योगी यती,
छेरी की खाल थोड़ा पानी भरि लाई है॥
साबर की खालन को बांधत सिपाही लोग,
गैंडा की खाल राजा रायन सुहाई है।
कहै कवि 'दयाराम' राम के भजन बिन,
मानुष की खाल कछू काम नहिं आई है॥१४॥

लालन मेरा लाड़ला, रूप बहुत तुझ माहिं।
'सुन्दर' राखै नैन में, पलक उघारै नाहिं॥१५॥

'सुन्दर' पंछी बिरछ पर, लियो बसेरा आनि।
राति रहे दिन उठि गये, त्यों कुटुम्ब सब जानि॥१६॥

लौन पूतरी उदधि में, थाह लेन को जाइ।
सुन्दर थाह न पाइये, बिच ही गई बिलाइ॥१७॥

पसु पच्छी हू जानहीं, अपनी अपनी पीर।
तब सुजान जानौ तुम्हें, जब जानौ पर पीर॥१८॥

ना सुख दारा सुत महल, ना सुख भूप भये।
साधु सुखी 'सहजो' कहै, तृष्नारोगगये॥१९॥

साधु वृक्ष बानी कली, चर्चा फूले फूल।
'सहजो' संगत बाग में, नाना फल रहे भूल ॥२०॥

बैठ बैठ बहुतक गये, जग तरवर की छाँहिं।
सहज बटाऊ बाट के, मिलि मिलि बिछुड़त जाहिं॥२१॥

सीस कान मुख नासिका, ऊँचे ऊँचे नाँव।
'सहजो' नीचे कारने, सब कोउ पूजै पाँव ॥२२॥

भली गरीबी नवनता, सकै न कोई मार।
'सहजो' रुई कपास की, काटै ना तरवार ॥२३॥

सकल वस्तु संग्रह करै, आवै कोउ दिन काम।
बखत परे पर ना मिलै, माटी खरचे दाम ॥२४॥

कारज करिय विचारि कै, कर्म लिखी सो होय।
पाछे उपजै ताप नहिं, निन्दा करै न कोय ॥२५॥
पावक बैरी रोग रिन, सेसहु रखिये नाहिं।
ए थोरे हूं बढ़हिं पुनि, महा जतन सो जाहिं ॥२६॥

मिल्यो रहत निज प्राप्ति हित, दगा समय पर देत।
बन्धु अधम तेहि कहत हैं, जाको मुख पर हेत ॥२७॥
सुख दुख अरु विग्रह विपति, यामें तजे न सङ्ग।
गिरिधरदास बखानिये, मित्र सोइ बर ढङ्ग ॥२८॥

सुख में सँग मिलि सुख करै, दुख में पाछे होय।
निज स्वारथ की मित्रता, मित्र अधम है सोय ॥२९॥

आप करै उपकार अति, प्रति उपकार न चाह।
हियरो कोमल संत सम, सुहृद सोइ नरनाह ॥३०॥

मन सों जग को भल चहै, हिय छल रहै न नेक।
सो सज्जन संसार में, जाके विमल विवेक ॥३१॥

उद्यम कीजै जगत में, मिलै भाग्य अनुसार।
मोती मिलै कि संख कर, सागर गोता मार ॥३२॥

बिन उद्यम नहीं पाइये, कर्म लिख्यो हू जौन।
बिनु जलपान न जायहै, प्यास गंग-तट भौन ॥३३॥

सुख दरिद्र सों दूर है, जस दुरजन सों दूर।
पथ्य चलन सों दूर रुज, दूर सीतलहिं सूर ॥३४॥

सरस कविन के हृदय को, वेधत है सो कौन।
असमझवार सराहिवो, समझवार को मौन ॥३५॥

जो मेढ़ा पीछे हटै, केहरिया छपकन्त।
जो दुर्जन हँसि के मिलै, तबै बचैयो कन्त ॥३६॥

निकट रहे आदर घटै, दूरि रहे दुख होय।
"सम्मन" या संसार में, प्रीति करौ जनि कोय ॥३७॥

'सम्मन' मीठी बात सों, होत सबै सुख पूर।
जेहि नहिं सीखो बोलिबो, तेहि सीखो सब धूर ॥३८॥

पलटू ऐसी प्रीति करु, ज्यों मजीठ को रंग।
टूक टूक कपड़ा उड़ै, रंग न छोड़ै संग ॥३९॥

पलटू भेद न दीजिये, यह जग बुरी बलाय।
लिये कतरनी काँख में, करै मित्रता धाय ॥४०॥

जो जन जाकी सरन है, सरन गहे की लाज।
मीन धार सन्मुख चलै, बहे जात गजराज ॥४१॥
नहिं सराहिये स्वर्ण गिरि, जहँ तरु तरुहि रहाहिं।
धन्य मलयगिरि जहँ सकल, तरु चन्दन हुइ जाहिं॥ ४२॥

यदपि मलयतरु को न विधि, फल अरु फूलन दीन्ह।
तदपि अहो! निज तन करत, औरन ताप बिहीन ॥४३॥

ऋतु निदाध दुःसह समय, मरुमग पथिक अनेक।
मेटे ताप कितेन की, यह मारग तरु एक ॥४४॥

फूल सुगन्ध न फल मधुर, छाँह न आवत काम।
सेमर तरु को जगत में, बढ़िवो निपट निकाम ॥४५॥

उपजे यदपि सुवंस में, खल तउ दुखद कराल।
चन्दन हूँ की आग ते, जरे देह तत्काल ॥४६॥

मानो दीन न ह्वो सकैं, बरुक प्रान दें खोय।
बिना बुझे सपनेहुँ नहिं, पावक सीतल होय ॥४७॥

अपने ते जो छुद्र अति, तिहिंपै करिउ न क्रोध।
किहूँ भाँति सोहत नहीं, केहरि ससक विरोध ॥४८॥

केहरि को अभिषेक कब, कीन्हों विप्र समाज।
निज भुजबल के तेज तें, विपिन भयो मृगराज ॥४९॥

लखि दरिद्र को दूर तें, लोग करैं अपमान।
जाचक जन ज्यों देखिकै, भूसत हैं बहु स्वान ॥५०॥

छीर होत तृन खाय कै, पय ते विष ह्वै जाय।
यहि विधि धेनु भुजंग रद, पात्र कुपात्र लखाय ॥५१॥

हित करि अपनो जानि बुध, बचन ताड़ना देत।
जैसे माली सुमन को, बेधत गुन के हेत ॥५२॥

——०——

शब्द-कोष

कबीर

१ काके–किसके
२ लँहड़े–झुण्ड
४ खेह–धूल
५ वृच्छ–वृत्त
भखैं–खाते हैं
९ कोर–किनारा
१० हरिया–हरा
रूखड़ा पेड़
१५ केरा–का
१९ बरजिया–मना किया
२० नारी-१ स्त्री, २ नाड़ी
२१ ढेंढी–कपास का डोडा
३० साले–पीड़ा करता है
३१ निकसै–निकलती है
४० छीर–चीर, दूध
४२ चौगान–पोलो का खेल
४३ कहा–क्या
४६ भुइँ–भूमि
खाला का घर सहज काम

४९ साँकरी–तंग
५१ बगूला–बवंडर
५२ मंझार–बीच में
५८ जनि–मत
६१ बकसत–देता है
६२ झीठ–झूठ
६६ जूझै लड़े
७४ पलास-ढाक, टेसू
८१ झाँई–अंधेरा
जीहड़िया–जीभ
८२ मीच–मृत्यु
दाझना–जलना
८३ मधूकरी–भिक्षा
८५ ओदी–गीली
सपचे–धीरे २ जलती है
सिगरो–सारी
८६ दव–आग
८९ करक–पीड़ा
९२ कथीर–रांगा

कसनी–परीक्षा, कसौटी

कै–या

हेम-सोना

९४ नाद–शब्द

कुरंग–हरिण

९८ छुधा–क्षुधा, भूख

११० उलीचिये–फेंकिये

११७ बिरानी–पराया

१२२ कुंजर–हाथी

१२५ नीर–पानी

जांचई–मांगता है

१२६ सुतहिं–पुत्र को

स्वाति बूंद-स्वाति नक्षत्र में बरसा हुआ पानी

१३० अघाय–तृप्त होवे

१३४ घींच–गरदन

चितवै–देखता है

१३५ नेम–नियम

१३९ पाहन–पत्थर

१४५ धका–धक्का

दरार–चीर पड़ना

१४६ भीनिया–भीगा हुआ

गाड़–गढ़ा

१५२ गाड़र–भेड़

१५३ ठाढ़ी–खड़ी

१५४ गहि–पकड़ कर

१५९ सिलि-सिल, पत्थर

तुलसीदास

१ बवै बोता है

लवै-लेता है

२ त्रयताप–तीन प्रकारकी अग्नि या दुख (आध्यात्मिक आधिभौतिक आधिदैविक)

३ धरनि-पृथिवी

६ गहनि–ग्रहण करना

८ अमल-निर्मल

१२ उपल-ओले

तराज–डराकर

चितव-देखता है

१३ जाचत–मांगता है

संग्रही–इकट्ठा करता

नाइ–झुककर

बारिद–बादल

१४ पोखरिन–छोटा तालाब

दसचारि–चौदह

१५ मते–समझ में

१६ विवरण–विवेचन,परीक्षा

उघरत–प्रकट होता है

१७ बिटप–पेड़

भुअँग–भुजंग, सांप

१८ मनि भाजन–मणियोंसे

बना हुआ बर्तन

मधु–मद्य, शराब

पारई–मट्टी का कटोरा

अमी–अमृत

१६ बसात–गन्ध देती है

२० अपने कहँ–अपने आद-

मियों (सम्बन्धियों) के लिये

२१ पय–दूध

विकार–दोष

२२ राकापति–चन्द्रमा

उवहिं–उदय हो जावें

गिरि पहाड़

राति–रात्रि, अन्धकार

२६ गुडी–पतंग

२६ मनुजाद–राक्षस

३१ जोग–योग्य

३२ जलद–बादल

बिरंचि–ब्रह्मा

३३ अम्बुज–कमल

अम्बु–जल

तरनि–सूर्य

३४ पावस–वर्षा ऋतु

३५ कामरी–कम्बल

कुमाच–रेशमी कपड़ा

३६ अन्तर–भेद

३८ सुग्रांव–सुन्दर ग्राम

पाहन पत्थर

४० उरग–सांप

तुरँग घोड़ा

नर नीचो–नीच मनुष्य

वार-देर

४२ जीह-जीभ

देहरी-दहलीज़

४३ रन-रणक्षेत्र

४५ कंचन-सोना

४७ छत्तीस-३६ में जिस तरह तीन और छः की आपस में पीठ है इसी तरह पीठ करके अर्थात् विमुख होकर छः तीन-६३ के समान मुख के सामने मुख करके

४६ परिहरु-छोड़ दो

५० काहि-कुछ भी

दाहिने-अनुकूल

५१ तौलगि-तब तक

५३ सरिस-समान

५४ परहेल-तिरस्कार कर

५५ घनेरे-बहुत

५६ नवनीत-मक्खन

५७ चह-चाहने वाला

५८ जामिनि-रात्रि

६० पान-शराब पीना

रहीम

१ रज-धूल

२ बापुरो-विचारो

६ कमला-लक्ष्मी, धन

७ पुरुष पुरातन-विष्णु वृद्ध पुरुष

७ बावने-वामन, ठिगना

८ निधि-कोष, खज़ाना

दुरै-छिपाया जाय

दृग-आंख

११ हित-प्रेमी

१२ नखत-नक्षत्र

१५ उवत-उदय होता है

अथवत-अस्त होता है

१९ कंज-कमल

२० कानि-चाल, मर्यादा

२२ सलोने–लावण्ययुक्त.नमकीन

२३ रीते–खाली होने पर
अनरीते–अनीति, पाप

३० सफरिन–मछली

३२ बारे–बालकपन में,जलाने पर
बढ़े–बढ़े होनेपर, बुझाने पर

३३ पचवत–पचाता है, यह प्रसिद्ध है कि चकोर चन्द्र पर मुग्ध है और अंगारे खाता है।

३५ नाद–शब्द

३६ कलारिन–शराब बेचने वाली

३७ सेंहुड़–पौधा विशेष जिसके पत्ते कुछ लम्बे होते हैं।

३८ व्याल–सांप

४१ गुन–रस्सी, गुण
सलिल–पानी

४३ छोह–प्रेम

४८ बतौरी–रोग विशेष जिसमें मांस पिण्ड की गांठ बन जाती है

५१ गोय–छिपा कर

५५ अवनि–पृथिवी
तोयवन्त—जलवाले

६० नै–झुककर

६२ कानन–जंगल
असन–खाना

६८ मँडुएतर की गांठ–विवाह मण्डप में पति पत्नी की परस्पर बांधी गई गांठ

६९ भेषज–दवाई

७२ पयान–प्रयान, प्रस्थान

७३ कचन–बाल

७७ हलुकन-हलके, नीच मनुष्य

७७ गरूए—गम्भीर

पछोर—फटकना

७९ मैन—कामदेव

पावक—आग

८१ बरी—दाल की पीसकर बनाई हुई बड़ी

८२ उखारी—ऊख का खेत

रसमरा—एक जंगली पौदा

९७ पानी—मोती की चमक, मान, प्रतिष्ठा, जल

१०२ कदली—केला

११० मामिला—काम, मुकद्दमा

१११ इतराय—ऐंठता है

११३ हहरि के—गिड़गिड़ाकर

१२१ विषान—सींग

१२९ हलाहल—विष

१३५ सीरे—ठंडा

१३६ ठाट—छप्पर, बांस की टट्टी

उसिसवां—तकिया

बिहारी

१ अनुरागी—प्रेमी

३ नेह—प्रेम

४ अपत—बिना पत्तों की

७ कर लै—हाथ में लेकर

सराहि—प्रशंसा करके

गँवई—गंवार

८ बिडारि—भगा

९ नागर—चतुर मनुष्य

आब—प्रतिष्ठा

१२ कनक—१ सोना, २ धतूरा

बौरात—पागल होता

१३ पगार—उतना पानी जिस में केवल पैर डूब सकें, उथला पानी

१४ चटक—चटकीलापन

चोल—मंजीठ

१५ बिससिये—विश्वास कीजिये

नये—नम्र, झुके हुए

१५ आंटे परि–दांव पाने पर

१६ सूमति–कृपणता, कंजूसी

जोर–जोर पकड़ती है,

बढ़ती है

१७ पोत–ढंग प्रवृत्ति

१८ दमामा–नगाड़ा

कहि–कहो

१६ प्रकृति–स्वभाव

बीच–अन्तर, फरक

२० दुराज–दो का राज्य

दंद–दुःख

२२ निसक–निर्बल

पातक–पाप

२३ सतरौहैं–क्रोधयुक्त

फारि–फाड़कर

२४ विरद–बड़ा नाम

२५ धंध–धंधा (कार्य)

२६ करतारि दै–हाथसे ताली

बजा कर

२७ नल नीर-नलके का पानी

जोइ–देखो

२८ सरोज–कमल

बरु–चाहे

२६ राजस–क्रोध

३० गलीत है–बुरी दशा

बनाकर

३१ चखन–आखों पर

३३ खरो सकात-बहुत डरता है

मयंक – चन्द्रमा

३४ राचति—प्रसन्न होता है

मतिभूल—अज्ञानी

गुड़हर–एक पेड़ जिसे

जपा भी कहते हैं

३५ दई–ईश्वर

३६ पाखें –पंख

भखु—भोजन

३७ पानि –हाथ

३८ बखान—प्रशंसा

४० डहडहो—हरा भरा

४२ मूर—मूल्य

४३ मही–बड़ी

४४ पारावार–समुद्र

छायाग्राहिनी-एक राक्षसी जिसने समुद्र फांदते हुए हनुमान की छाया पकड़ कर उन्हें खींच लिया था

४६ कुरंग–हरिण

सुरझि–सुलझ कर

४७ सरै–चलता

कांचे–कच्चा होने पर

४९ सदन–घर

बाट–रास्ता

५०भज्यो–१ भागा, २ भजन किया

५१ गुन–गुण, रस्सी

५२ दई दई–हाय हाय

दई दई–ईश्वरने जो कुछ दिया है

५४ जग बाय–संसार की हवा

५५ करुनाकरो–करुणा करने वाले

५५ भो–होगये

५६ कुबत–निन्दा

वृन्द

१ गारि—गाली

३ रीते—सूखे

४ विषे—बीच में

५ सौर—रजाई

७ बयार—हवा

८ तूठे—सन्तुष्ट होता है

दव—आग

११ पवन—हवा

१६ कुच—स्तन

उदोत—प्रकाश, धूप

१७ कूप भेक—कुएं का मेंडक

१८ भौंर—भौंरा

२५ कलाली—शराब वेचने वाली

२६ सुरा—शराब

अहीरी—ग्वालिन

पानि—हाथ

२८ धेन–धेनु, गाय

२९ रसरी–रस्सी

करी–१बनाई, २ हाथी

३० नेकु–जरा भी

बान–बनावट, रूप

३२ बेध–बाँधा जाना

गुन–१ रस्सी, २ गुण

३३ उमहं–उत्साहपूर्वक

पय–दूध

पयोधर–स्तन

३४ उनयो–उमड़ा हुआ

पयोद–बादल

३८ दल–पत्ता

ईस–महादेव

४१ पैस–घुस

भुंसि–भौंक

स्वान–कुत्ता

४२ मृगराज–सिंह

४४ कीर–तोता

४५ अमली–नशेबाज

आफू–अफीम

सराहि–प्रशंसा करके

४७ भाय–तरह

बिलाय–नष्ट होजाते हैं

५० अपावन–अपवित्र

५१ नाल–डंडी

५१ कहा–क्या

बसाय–बस चलता है

५४ रांचै–रचता है, करता है

५६ ठकुराई–स्वामित्व, हुकूमत

५७ वचन रचन–वाक्यरचना शब्द

कापुरुप–नीच मनुष्य

कछप–कच्छप, कछुआ

दुरजाय–छिप जाते हैं

५९ उपचार–कार्य

६० हेम–सोना

६१ प्रकृति–स्वभाव

६३ रैन–रात

परिहरी–छोड़ दी

रजक–धोबी

बैन–वचन

६४ अयान–अज्ञानी

बिहान–प्रात:काल

६६ छिनक–एक क्षण

जारत-जला देता है

६७ सुकुल–अच्छा कुल

अगर–धूप

६८ प्रसूत–बच्चा पैदा होना

६९ तरे–नीचे

७३ बिरवान–पौदा

पात-पत्ते

७४ तनय–बच्चा

अभीति–बिना डर के

७५ परव–त्योहार

७९ इंगित–इशारा

दुरै-छिपती

८० दुरद–हाथी

रद–दांत

८१ सरसुति–सरस्वती, विद्या

८२ जनि–मत

काहू पै–किसी के पास

बिलसै-भोग करे

८४ हित–प्रेम

९० भेसज–दवाई

९१ भील–यहां एकलव्य से तात्पर्य है

९२ तूल–रुई

हरबो–हलका

९४ अविधि–उलटा कार्य

गिरिधर

१ दावा–आग

मिन्ता–मित्र

व्यापै– व्याप्त है, रहती है

२ पौरिया–दरवान

तरह देना–विरोध न करना

३ बंधुआ–कैदी

लबार–बातूनी, झूठा

नगर-नारि–वेश्या

परतीति-विश्वास

अनगैरी—अपरिचित

४ बार—देर

६ रूपा—चांदी के समान सफेद

७ हरी—छीनी

अपङ्ग—अङ्ग हीन, शक्ति हीन

९ अपावन—अपवित्र

१२ फूहर—फूहड़, जो औरत किसी काम को भी ठीक तरह न कर सके

रांध्यो—पकाया

१३ घाम—धूप

बयारि—हवा

१५ हेरे—देखने से

१८ दावागीर—हक बताने वाला

१९ खासा—एक प्रकार का सूती कपड़ा

बाफता—एक प्रकार का रेशमी कपड़ा

बकुचा—गठरी

माट—बाझ

२२ तातो—गरम, क्रोधित

सियरे—ठंडे, शान्त

२३ मृगमद—कस्तूरी

बरहा—खेतों में सिंचाई के लिए बनी हुई नाली

अगर—एक सुगंधित पदार्थ

संयूता—संयुक्त

बयो—बोया गया

२५ अनखैहै—रुष्ट होगा

२७ बाज्यो—कहलाया

दीनदयाल गिरि

१ पयानो—प्रयाण, जाना

२ पियूख—अमृत

हरसेखर—विष्णु का शिर

आसीन—बैठा हुआ

३ पयोद बादल

ठौर—स्थान

बलाहक—बादल

४ रतनाकर—रत्नों का घर, समुद्र

मरजीवा—मोती निकालने वाला

५ ढाहै—गिरा

पावस—वर्षाऋतु

समीर—हवा

६ चंचरीक—भौंरा

रावरे—तुम्हारे

सौरभ—सुगन्धि

मिलिन्द—भौंरा

दारु—लकड़ी

बेधनिहारो—बेधने वाला, छेदने वाला

७ दवागि—जंगल की आग

८ झख—मछली

खज—खाने योग्य

आली—पंक्ति

९ पैहै—पायगा

१० द्रुम—पेड़

पुंज—समूह

भृंग—भौंरे

११ साखि—शाखा, टहनी

१२ रम्भा—केला

१३ दली—पत्तों वाला

नय—नम्र

नाहर—पलाश का फूल

१४ दल—पत्ता

रितुराज—वसन्त

तव—तेरे

दिसि—तरफ

हित—प्रेम

१५ गुनो—ख्याल करो

भासै—प्रतीत होता है

मुद—आनन्द

१६ सासना—दण्ड

१७ रीझिबो—प्रसन्न होना

हनै—मारे

मृगजूथ—मृग समूह

केतिक—कितना ही

१८ गुंजन–रत्तियां
मुक्तन–मोती
किरातिनी–भीलनी
१९ ढिग–पास
भांवैर–चक्कर
घनेरी–बहुत
२० रद–दांत
केहरी–सिंह
जरा–बुढ़ापा
जम्बुक–गीदड़
पंगु–लंगड़ा
२१ टेरि –पुकार कर
चीर–कपड़ा

वियोगी हरि

१ पैंड–पग, कदम
मेंड–लकीर, सीमा
३ खलाय–सिकोड़ कर, पिचका कर
चून–आटा, जूठन
नाहर–सिंह
४ कादरनु–कायर, डरपोक
धर–धड़
७ सतसंध–सत्यप्रतिज्ञ
सुकृती–सज्जन
कबन्ध–धड़
८ करवाल–तलवार
कलमाल–सुन्दर माला
१३ भूरि–बहुत
१४ अनल–आग
वीर-बधून–वीर पत्नियां
१६ छीर–दूध
१६ धरा–पृथिवी
भान–भानु, सूर्य
१८ केलि–क्रीड़ा
करिनीन–हथनियां
गाज–बिजली
१९ दहि–जलाकर
दुवन–शत्रुओं का
दीह–दीर्घ, बड़ा
२० पत्रा–पंचांग, जंत्री

सोधत–निर्णय करते
नखत–नक्षत्र
२१ परखति–प्रतीक्षा करते हुए
बिसिख-हारु–तीरों का हार
२५ परिधान–वस्त्र, पहनावा
२७ किमि–किस प्रकार
पैहौ–पाओगे
अधर–ओष्ठ
स्वान–कुत्ता
२८ चंचरीक–भौंरा
३० उमाह–उमङ्ग उत्साह
३१ रली-क्रीडा
अलसौंहीं–आलस्यवाली
३३ पानिप–आब, चमक
३४ अवदात–शुभ
३५ साँरग-धनुष
अँगना–स्त्री
३६ ढार–ढांचा
३८ जनि–मत
३९ अहै-है
४४ बदराह–बुरी राह पर चलनेवाले, नीच
गयंद–हाथी
४७ ठाढ़े–खड़े
४९ तुरंग–घोड़ा
५१ ईछन–दृष्टि
५२ आरसी–दर्पण
५३ पौढ़े–सोये
५५ तिय–स्त्री
कटि–कमर
कृसता-दुर्बलता, सूक्ष्मता
५६ सुकृत–पुण्य
निकेत–घर
६० भांवरि–फेरे
भामिनि-स्त्री

फुटकर

१ निधन–गरीब
२ सुफर–अच्छे फल

१ जरे ते–जलने से

पत–प्रतिष्टा, इज्जत

७ खेह–राख

रूख–वृत्त

डासन–विस्तरा

कास–कुशा, एक तरह की घास

८ पौन–पवन, हवा

९ सायर–शायर, कवि

१० खीन–त्तीण, सूद्दम

मृणाल–कमलदण्ड

वेह–वेधना, पारकरना

टांडो–गड्ढा

अनी -नोक

नेज–नेज़ा

११ महीरुह–वृत्त

पखेरु–पत्ती

परांहि–भाग जाते हैं

गनिका–वेश्या

शिवसम्पति–कवि का नाम है

१३ सुरन–देवताओं पर

१४ तपी -तपस्वी

छेरी–बकरी

साबर–सांभर; एक प्रकार का मृग

१७ पूतरी–पुतली

२७ हेत–प्रेम

२८ विग्रह–लड़ाई

३४ सूर -सूर्य

४४ निदाघ–गर्मी